अंक : 10 वर्ष : 10 अक्टूबर 2025 पृष्ठ : 40 मूल्य : 50 रुपये

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

लद्दाख की आवाज सुनिए

गांधीवाद की प्रासंगिकता

नफरत के दौर में सत्य

गाँधी और धर्मनिरपेक्षता

सत्ता नहीं सेवा का दूसरा नाम लाल बहादुर शास्त्री

MM
@mediamapnews
सब्स्क्राइब करें हमारा डिजिटल प्लेटफार्म

सादा जीवन, उच्च विचार–यही है शास्त्रीजी का उपहार

लाल बहादुर शास्त्री जी के उत्कृष्ट कार्य भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं उन्होंने अपने अल्प कार्यकाल में भी भारत को नई दिशा दी। उनके प्रमुख कार्य हैं -

- गांधी जी की स्वदेशी नीति को अपनाया-चरखा चलाकर सूत कातकर खादी को बढ़ावा दिया।
- शास्त्री जी ने 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय का नारा दिया। इससे सैनिकों में देशभक्ति और किसानों में आत्मविश्वास का संचार हुआ। यह नारा आज भी भारत की धड़कन है।
- 1965 के भारत-पाक युद्ध में अद्भुत नेतृत्व। प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने दृढ़ता और साहस दिखाते हुए पाकिस्तान को करारा जवाब दिया। उनके शांत स्वभाव के पीछे लोहे जैसी इच्छाशक्ति थी।
- आत्म निर्भर भारत-हरित क्रांति की नींव। भारत में अन्न संकट के समय उन्होंने कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक खेती, सिंचाई योजनाओं और उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप भारत आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा।
- रेल दुर्घटनाओं की जिम्मेदारी स्वीकार करते हुए उन्होंने नैतिकता की मिसाल पेश की और इस्तीफा दे दिया- जो आज भी प्रशासनिक ईमानदारी का प्रतीक है।
- शास्त्री जी ने सादगी, ईमानदारी और सच्चरित्रता का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रधानमंत्री बनने के बाद भी उनका रहन-सहन एक साधारण नागरिक जैसा ही था।

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल
डॉ. बलदेवराज गुप्त
के.बी. माथुर
डॉ. सलीम खान

प्रधान संपादक
प्रो. प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक : डॉ. सतीश मिश्रा
सहायक संपादक : प्रो. शिवाजी सरकार
विज्ञान तकनीकी संपादक : राजीव माथुर
विशेष प्रतिनिधि : डॉ. मुज़फ्फर गज़ाली
मुख्य उप संपादक : जितेन्द्र मिश्र
वरिष्ठ उप संपादक : प्रशांत गौतम
उप संपादक : अंकुर कुमार

प्रबंध संपादक : चन्द्र कुमार एडवोकेट
प्रबंधक : जगदीश गौतम
विधि परामर्शदाता : संजय माथुर

पंजीकृत कार्यालय : 2324, सेक्टर-डी पॉकेट-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली

संपादकीय कार्यालय : 70 ज्ञानखंड-4, इंदिरापुरम गाजियाबाद- 201014 (उत्तर प्रदेश)

दूरभाष : 9810385757/9910069262
एम बी के एम फाउंडेशन प्रकाशन

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली से मुद्रित एवं मकान नंबर 70, ज्ञानखंड-4, इंदिरापुरम, जनपद-गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश- 201014 से प्रकाशित।

सभी लेखों में लेखकों के अपने उल्लेखित विचार हैं। लेखों और विचारों को लेकर किसी तरह का विवाद होने पर पत्रिका के संपादक, प्रकाशक, मुद्रक इसके लिए उत्तरदायी नहीं होंगे। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र जिला और न्यायालय गाजियाबाद ही होगा। इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, सहयोगी और लेखक अवैतनिक हैं। पीआरबी एक्ट के तहत संपादक प्रो. प्रदीप माथुर उत्तरदायी हैं।

RNI No. : UPHIN/2016/68336

अनुक्रमणिका

4 संपादकीय : आज की राजनीति में गांधीवाद की प्रासंगिकता

विचार-प्रवाह : उपभोक्तावाद पर लगाम कस सकती है गांधीवादी विचारधारा 5-6

7 गांधी जयंती परिशिष्ट- नफरत के दौर में सत्य : तुषार ए. गांधी

गांधी और धर्मनिरपेक्षता : राम पुनियानी 8-9

10-11 गांधी-अंबेडकर संवाद : वैचारिक मित्रता मतभेद और भविष्य का समन्वय

गांधीवाद की हत्या का प्रयास राष्ट्र के खिलाफ अपराध : प्रो. प्रदीप माथुर 12

13-14 नाटक के जरिए समाज को बदलने की साधना : सुरेन्या अय्यर

साक्षात्कार : आज के सियासी दौर में शास्त्री जी की प्रासंगिकता 15-16

17-18 मोदी का तीसरा कार्यकाल : भारत के सामने चुनौतियां, मूल्यांकन व अवसर

यासीन मलिक : क्या वह राज्य की चालों का शिकार : डॉ. सतीश मिश्रा 19-20

21-22 लद्दाख का मूक ज्वालामुखी : डॉ. सलीम खान

लद्दाख आंदोलन क्यों भड़का और कैसे बना राष्ट्रीय मुद्दा : डॉ. मुज़फ्फर हुसैन ग़ज़ाली 23-24

24-25 लद्दाख त्रासदी : पुल जलाने की बीजेपी शैली- डॉ. सतीश मिश्रा

भटका आंदोलन : लद्दाख की आवाज...! : पूना आई कौशिश 25-26

27-28 जीएसटी-2 : राजस्व पहले या उपभोक्ताओं को राहत

विरोधाभासों के बीच भारत की अर्थव्यवस्था : प्रो. शिवाजी सरकार 28-29

32-34 150वीं जयंती पर विशेष : सरदार पटेल को भूलती भजापा

कन्या : डर की जंजीरों से आजादी की लड़ाई 35

36 हे माँ लक्ष्मी कर प्रकाश समृद्धि प्रेम वृद्धि का : प्रणाम मीना ऊँ

Email : editor@mediamap.co.in

प्रो. प्रदीप माथुर

संपादकीय

आज की राजनीति में गांधीवाद की प्रासंगिकता

अक्टूबर का महीना हमारे देश के लिए विशेष महत्व रखता है। यह अधिकांश प्रांतों में त्योहारों के मौसम की शुरुआत है और साथ ही स्वतंत्रता संग्राम के दिग्गज नेताओं की जन्मतिथि का स्मरण कराने वाला महीना भी है। महात्मा गांधी, जिन्हें विश्व ने बीसवीं सदी का सबसे महान जननेता माना और लौहपुरुष कहे जाने वाले सरदार पटेल, जिनकी प्रशासनिक दक्षता अद्वितीय थी–दोनों का जन्म इसी महीने हुआ। इसी महीने हमारे दूसरे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का जन्म हुआ, जो ईमानदारी और सादगी के प्रतीक थे। वहीं अक्टूबर ही वह महीना है जब उनकी उत्तराधिकारी और अपने आप में एक करिश्माई नेता श्रीमती इंदिरा गांधी की दुखद हत्या हुई।

महात्मा गांधी का दर्शन–गांधीवाद या 'गांधीगिरी'– ने पूरी दुनिया के करोड़ों लोगों को प्रभावित किया। उन्होंने प्रेम, शांति और मानवता का संदेश उस समय दिया जब दुनिया घोर विभाजनों से जूझ रही थी और दो महायुद्धों की विभीषिका करोड़ों लोगों की जान और भारी आर्थिक–सामाजिक संसाधनों को निगल चुकी थी।

आज का समय भी वैसा ही है। यूरोप और पश्चिम एशिया में युद्ध जारी हैं, दक्षिण एशिया सहित दुनिया के कई हिस्सों में हिंसा और संघर्ष देखने को मिल रहे हैं। ऐसे में गांधीजी का शांति का संदेश पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है।

परंतु अंतरराष्ट्रीय मंच से भी अधिक, गांधीजी का संदेश उनके अपने देश भारत के लिए आज सबसे ज्यादा आवश्यक है। जिस भारत को उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत से आजाद कराया और समावेशी विकास की राह पर आगे बढ़ाया, उसी भारत में आज शासकों की संकीर्ण वैचारिक सोच जातीय और सांप्रदायिक आधारों पर गहरी खाइयां पैदा कर रही है। साथ ही, भाई–भतीजावाद पर आधारित आर्थिक नीतियों ने समाज में बेचैनी, असहिष्णुता और सांप्रदायिक हिंसा तक को जन्म दिया है।

वह भारत की परिकल्पना– जो अहिंसात्मक स्वतंत्रता आंदोलन से उभरी और जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजगोपालाचारी और मौलाना आजाद जैसे नेताओं ने जिसे समावेशी विकास के लिए प्रशासनिक ढांचे में ढाला– आज भुला दी गई है। उसकी जगह एक संकीर्ण और सांप्रदायिक कथा ने ले ली है जो प्रतिगामी सोच पर आधारित है। इस नए आख्यान का प्रभावी प्रतिरोध आवश्यक है, ताकि हमारी संस्कृति, जाति, पंथ और भाषाओं की अद्भुत विविधता से भरे भारत को बचाया जा सके। और इसका सबसे कारगर वैचारिक उपाय है गांधीवाद।

इसी दृष्टि से हमने अपने अक्टूबर अंक का बड़ा हिस्सा महात्मा गांधी को समर्पित किया है। इसमें गांधीवादी दर्शन और उसकी आज के भारत में प्रासंगिकता पर कई लेख शामिल हैं। इनमें गांधीजी के प्रपौत्र तुषार गांधी का लेख विशेष महत्व रखता है।

इसी बीच, जब यह अंक अंतिम रूप ले रहा था, लद्दाख की संवेदनशील सीमा–रेखा वाले क्षेत्र की राजधानी लेह में हिंसा भड़क उठी, जहां लोगों की आवाज को केंद्र द्वारा अनसुना किया जा रहा था। हमारे सह–संपादक डॉ. सतीश मिश्रा के नेतृत्व में हमने त्वरित रूप से कुछ सामग्री तैयार की, जिसमें तुषार गांधी का एक साक्षात्कार भी शामिल है, ताकि इस पूरे मुद्दे के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सके। हमें उम्मीद है कि जल्द ही इस क्षेत्र में शांति लौटेगी और वहां के मूल निवासियों की आकांक्षाओं के अनुरूप विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। मुझे विश्वास है कि आपको यह अंक पसंद आएगा।

महात्मा गांधी, जिन्हें विश्व ने बीसवीं सदी का सबसे महान जननेता माना और लौहपुरुष कहे जाने वाले सरदार पटेल, जिनकी प्रशासनिक दक्षता अद्वितीय थी- दोनों का जन्म इसी महीने हुआ। इसी महीने हमारे दूसरे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का जन्म हुआ, जो ईमानदारी और सादगी के प्रतीक थे। वहीं अक्टूबर ही वह महीना है जब उनकी उत्तराधिकारी और अपने आप में एक करिश्माई नेता श्रीमती इंदिरा गांधी की दुखद हत्या हुई। महात्मा गांधी का दर्शन-गांधीवाद या 'गांधीगिरी'- ने पूरी दुनिया के करोड़ों लोगों को प्रभावित किया। उन्होंने प्रेम, शांति और मानवता का संदेश उस समय दिया जब दुनिया घोर विभाजनों से जूझ रही थी और दो महायुद्धों की विभीषिका करोड़ों लोगों की जान और भारी आर्थिक-सामाजिक संसाधनों को निगल चुकी थी। आज का समय भी वैसा ही है। यूरोप और पश्चिम एशिया में युद्ध जारी हैं, दक्षिण एशिया सहित दुनिया के कई हिस्सों में हिंसा और संघर्ष देखने को मिल रहे हैं। ऐसे में गांधीजी का शांति का संदेश पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है।

विचार-प्रवाह

उपभोक्तावाद पर लगाम कस सकती है गांधीवादी विचारधारा

महान व्यक्तित्वों की तरह महात्मा गांधी भी अपने समय से बहुत आगे थे। जब यह आधा नंगा फकीर सादा जीवन और अंत्योदय–अर्थात समाज की पंक्ति में सबसे अंतिम व्यक्ति के उत्थान– की बात करता था, तो शायद उसे उपभोक्तावाद के उस खतरे का आभास था, जिससे आज हम जूझ रहे हैं। हम ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ 'अत्यधिकता' सामान्य हो गई है। संयम हम भूल चुके हैं, और यही रोग हमें असंतुष्ट, बेचैन और लगातार अधूरा बनाए रखता है। यह अधूरापन हमारे मानसिक स्वास्थ्य को कितना नुकसान पहुंचाता है, यह केवल मनोचिकित्सक ही बता सकता है। धन की भूख भी 'अत्यधिकता' का ही रूप है।

भारत के मध्यवर्ग, उच्च मध्यवर्ग और अभिजात वर्ग–यानी लगभग 20 करोड़ लोग– पहले से ही आरामदायक जीवन के लिए पर्याप्त से अधिक रखते हैं। फिर भी वे और अधिक की दौड़ में लगे रहते हैं और 'अधिकता' की समस्याओं से ही जूझते रहते हैं। इसकी कीमत? मानसिक शांति। उपभोक्तावाद अपनी पीड़ाएं लेकर आता है। नया खरीदने का सुख क्षणिक होता है, पर थोड़े समय बाद फिर वही बेचैनी लौट आती है। यह ऐसी प्यास है जिसे कोई खरीद बुझा नहीं सकती। सच्चा सुख कम इच्छाओं में है, असीमित संग्रह में नहीं। शायद हमें स्टीव जॉब्स की अंतिम स्वीकारोक्ति सुननी चाहिए। अरबपति होते हुए भी मृत्युशैया पर उन्होंने कहा कि धन कमाने की दौड़ में वे जीवन जीना भूल गए। उनके शब्द मायाजाल तोड़ते हैं–

- बड़ी कार चलाओ या छोटी, यात्रा का समय समान है।
- हीरों से जड़ी घड़ी पहनो या साधारण, समय वही दिखाती है।
- इकोनॉमी क्लास उड़ो या बिजनेस, यदि विमान गिरा तो अंजाम एक–सा है।

यह सच्चाई हर धर्मग्रंथ और अध्यात्म का सार है–एक सीमा के बाद 'और अधिक' कुछ नहीं जोड़ता। पर हम इस भ्रम में जीते हैं कि अगली उपलब्धि ही हमें सुख देगी। अंततः 'अत्यधिकता' ही हमारे युग की परिभाषा बन गई है– संपत्ति, उपभोग, महत्वाकांक्षा, तुलना और चिंता– सबमें। हम अति की महामारी में जी रहे हैं, निरंतर भागते हुए, पर कहीं नहीं पहुंचते। मेरे बचपन के एक अल्पशिक्षित ट्यूटर, जिन्हें उनकी टूटी-फूटी अंग्रेजी के कारण मजाक में लिया जाता था, शायद हमारे समय के लिए सबसे उपयुक्त शब्द गढ़ गए थे– 'टू मचनेस' ही हमारी असली महामारी है। और कोविड की तरह इसका कोई टीका नजर नहीं आता।

■■ **प्रो. प्रदीप माथुर**

खामोश आवाजें और हिलती लोकतांत्रिक बुनियाद

नई दिल्ली : जवाहर भवन में एसोसिएशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट्स (APCR) द्वारा आयोजित चर्चा 'न्याय की तलाश : जमानत से लगातार इनकार और असहमति का पिंजरा' में न्यायपालिका, वरिष्ठ वकीलों, कार्यकर्ताओं और कलाकारों ने कठोर कानूनों– विशेषकर यूएपीए–के दुरुपयोग और असहमति को अपराध मानने की प्रवृत्ति पर गंभीर चिंता जताई।

पूर्व आईएएस अधिकारी के. गोपीनाथन ने बताया कि असहमति को आतंकवाद से जोड़कर नागरिकता और अल्पसंख्यकों पर दबाव बनाया जा रहा है। उन्होंने चेताया कि चुप रहना कल आत्मसमर्पण होगा। अभिनेता–कार्यकर्ता प्रकाश राज ने उमर खालिद की लंबी कैद और उनके साथियों के साहसिक समर्थन का जिक्र किया और कहा कि आवाज़ उठाना राजनीति नहीं बल्कि नैतिकता है।

पटना उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस इक़बाल अंसारी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि असहमति के बिना लोकतंत्र अधीनता में बदल जाता है। न्यायाधीशों की शपथ निडर होकर काम करने की होती है, पर डर ने व्यवस्था में जगह बना ली है।

वरिष्ठ वकील प्रशांत भूषण ने कहा कि दिल्ली दंगा साजिश मामले में सबूत नहीं हैं, केवल कागजी कार्यवाहियां हैं। यूएपीए की जमानत व्यवस्था ने जेल को नियम और ज़मानत को अपवाद बना दिया है। संजय हेगड़े ने भी कहा कि एजेंसियां अदालतों को हज़ारों पन्नों से भरकर मुकदमे को लंबा खींचती हैं।

वरिष्ठ अधिवक्ता कॉलिन गोंसाल्विस ने न्यायपालिका में भय का माहौल बताते हुए जस्टिस मुरलीधर के तबादले को उदाहरण बनाया। अन्य वक्ताओं ने कहा कि पुलिस की बढ़ती शक्तियां और अदालतों की झिझक से असहमति जताने वाले लोग बिना मुकदमे के कैद में पड़े हैं। चर्चा का निष्कर्ष साफ था–भारत का संवैधानिक वादा संकट में है। असहमति का अधिकार केवल एक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि वह आधार है, जिस पर सभी स्वतंत्रताएं टिकी हैं।

■■ **मोहम्मद नौशाद ख़ान**

गोदी मीडिया व नफरत के बढ़ते अपराध

नई दिल्ली : भारत के लोकतंत्र की जर्जर होती इमारत में 'गोदी मीडिया'– जो सत्ता की गोद में बैठकर पत्रकारिता की आड़ में बहुलतावाद पर हमला करती है– सबसे बड़ा दोषी बन चुकी है।पत्रकार रवीश कुमार द्वारा गढ़ा गया यह शब्द उन चैनलों पर व्यंग्य है जो भाजपा की नीतियों का बेजा प्रचार करते हैं। रिपब्लिक टीवी, जी न्यूज और टाइम्स नाउ जैसे मंच खबर को विश्लेषण नहीं, बल्कि समाज को बांटने का हथियार बना चुके हैं। ये चैनल कभी जवाबदेही के प्रतीक थे, लेकिन आज साम्प्रदायिक तनाव भड़काकर गांधी के सपनों के भारत को कमजोर कर रहे हैं। अदालतों ने बार–बार चेताया है कि टीवी एंकरों की जिम्मेदारी है कि वे नफरत फैलने से रोकें। 2018 के तहसीन पूनावाला मामले में सुप्रीम कोर्ट ने लिंचिंग रोकने के निर्देश दिए, पर उनका सही पालन नहीं हुआ। जुलाई 2025 में कोर्ट ने भाईचारे को नफरत रोकने का उपाय बताया।

अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं भी चिन्तित हैं। रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स की प्रेस स्वतंत्रता सूची में भारत 180 देशों में 151वें स्थान पर है। रॉयटर्स इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट बताती है कि दर्शकों का भरोसा घट रहा है क्योंकि खबरें अब राजनीतिक प्रचार बन चुकी हैं। ह्यूमन राइट्स वॉच और एमनेस्टी ने भी अल्पसंख्यकों के खिलाफ बढ़ती हिंसा का जिम्मेदार चुनावी नारे और मीडिया को ठहराया है।

हरियाणा के नूह दंगे से लेकर मणिपुर की जातीय हिंसा तक, गोदी मीडिया ने छोटी घटनाओं को धार्मिक टकराव में बदला। मुस्लिम समाज पर 'देशद्रोही' जैसे लेबल चिपकाकर बुलडोजर कार्रवाई को जायज ठहराया गया। नागरिकता संशोधन अधिनियम के बाद तो नफरत और हिंसा में और वृद्धि हुई।

सच्चाई यह है कि गोदी मीडिया सिर्फ पक्षपात नहीं करती, बल्कि लोकतंत्र को खोखला बनाने की प्रक्रिया में संरचनात्मक रूप से शामिल है। यह न केवल संस्थाओं को कमजोर करती है, बल्कि जनता को सच से दूर रखती है।

भारत की धर्मनिरपेक्ष एकता को बचाने के लिए पत्रकारिता को सत्ता की गोद से बाहर निकालना होगा। केवल निर्भीक और ईमानदार पत्रकारिता ही इस जख्म को भर सकती है।

■■ **जॉन दयाल**

मुंबई और नवी मुंबई के गिग वर्कर्स

मुंबई और नवी मुंबई की तेज रफ्तार ज़िंदगी में गिग वर्कर अब स्थानीय ट्रेनों जितने ही जरूरी हो चुके हैं। ज़ोमैटो, स्विगी, अमेज़न, फ्लिपकार्ट जैसे प्लेटफार्मों के लोगो से सजी स्कूटरों पर ये नौजवान ट्रैफ़िक, बारिश और देर होने के जुर्माने के डर से जूझते हुए ग्राहकों तक सामान पहुंचाते हैं। ब्लिंकिट, ज़ेप्टो और इंस्टामार्ट की 10 मिनट डिलीवरी हो या फूड ऐप्स की 15–20 मिनट की डेडलाइन–इन 'डिलीवरी पार्टनर्स' पर निरंतर दबाव रहता है।

नीति आयोग की 2022 की रिपोर्ट "India's Booming Gig and Platform Economy" के अनुसार, 2020–21 में भारत में लगभग 77 लाख गिग वर्कर थे, जिनमें से 36 लाख ऐप–आधारित प्लेटफ़ॉर्म नौकरियों में लगे थे। इनमें खुदरा और लॉजिस्टिक्स–यानी फूड और पार्सल डिलीवरी– की हिस्सेदारी लगभग 26 प्रतिशत थी। राष्ट्रीय आंकड़ों के आधार पर अनुमान है कि केवल मुंबई महानगरीय क्षेत्र में 5.5 से 7.5 लाख तक गिग वर्कर सक्रिय हैं।

सिर्फ फूड डिलीवरी की बात करें तो मुंबई और नवी मुंबई में स्विगी और ज़ोमैटो के लगभग 80,000 से 1.2 लाख पार्टनर हैं। अमेज़न और फ्लिपकार्ट की ई–कॉमर्स डिलीवरी से जुड़े 60,000 से एख लाख वर्कर आम दिनों में काम करते हैं, जो त्योहारों में 50,000–एक लाख अतिरिक्त अस्थायी कर्मचारियों तक बढ़ जाते हैं। यानी कुल मिलाकर यहां 1.5 से दो लाख से अधिक गिग वर्कर सक्रिय हैं।

लेकिन सवाल यह है कि उनका भविष्य क्या है? पार्टनर कहकर कंपनियां मुनाफे में हिस्सेदारी क्यों नहीं देतीं? उन्हें कर्मचारी मानकर बीमा और भविष्य निधि क्यों नहीं दी जाती? सरकार ने 2020 के सोशल सिक्योरिटी कोड में गिग वर्करों को मान्यता दी है, पर उसका क्रियान्वयन अधूरा है। राजस्थान और कर्नाटक ने सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लिए क़ानून बनाए हैं और केंद्र सरकार ने 2025 में एक करोड़ गिग वर्करों के लिए स्वास्थ्य बीमा की घोषणा की है, मगर व्यवहारिक परिणाम अस्पष्ट हैं। जरूरी है कि महाराष्ट्र सरकार गिग वर्कर वेलफेयर बोर्ड बनाए, भविष्य निधि और बीमा अनिवार्य करे तथा राजनीतिक दल इन्हें अपने चुनावी घोषणापत्र में शामिल करें। गिग अर्थव्यवस्था तभी मजबूत होगी जब इसमें काम करने वालों को वास्तविक सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा मिलेगी।

■■ **शेख़ सलीम**

नफरत के दौर में सत्य

तुषार ए. गांधी

तुषार गांधी एक भारतीय लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता और महात्मा गांधी के परपोते हैं। उन्होंने 1998 में वडोदरा में महात्मा गांधी फाउंडेशन की स्थापना की (जो अब मुंबई में स्थित है) और वे इसके अध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। तुषार का जन्म : 17 जनवरी 1960, महाराष्ट्र के शेगांव में हुआ और उनका पालन-पोषण मुंबई में हुआ। उन्होंने प्रिंटिंग टेक्नोलॉजी की पढ़ाई की और लंबे समय से सामाजिक और मानवीय कार्यों में सक्रिय हैं। उन्होंने 2005 में ऐतिहासिक दांडी यात्रा की 75वीं वर्षगांठ पर उसकी पुनरावृत्ति का नेतृत्व किया और 2009 में प्रशंसित फिल्म 'रोड टू संगम' में स्वयं का किरदार निभाया। उनकी पुस्तक 'लेट्स किल गांधी' (2007) में महात्मा गांधी की हत्या के पीछे की साजिशों की पड़ताल की गई, जिसने देशभर में बहस को जन्म दिया। तुषार गांधी ऑस्ट्रेलियन इंडियन रूरल डेवलपमेंट फाउंडेशन के अध्यक्ष, महाराष्ट्र गांधी स्मारक निधि के ट्रस्टी और गांधी रिसर्च फाउंडेशन के निदेशक भी रह चुके हैं। अपने परदादा की विरासत को आगे बढ़ाते हुए, वे साम्प्रदायिक हिंसा के खिलाफ मुखर रहे हैं और 2022 में भारत जोड़ो यात्रा में भी भाग लिया।

'हम भारतीय, चाहे किसी भी धर्म के हों, हमें साथ रहना है। हम सब एक ही मिट्टी के हैं, एक ही माँ ने हमें पाला है और अगर भारत को जीवित रहना है तो हम एक-दूसरे को मारते नहीं रह सकते।'
– महात्मा गांधी, हरिजन, 27 अप्रैल 1947

भारत का इतिहास गवाह है कि हिंदू और मुसलमान हमेशा शांति से नहीं रहे। समय-समय पर संघर्ष भी हुए। लेकिन यह निर्विवाद सत्य है कि जब-जब सांप्रदायिक टकराव भड़का, भारत एक राष्ट्र के रूप में कमज़ोर और विभाजित हुआ। धार्मिक भावनाओं को भड़काकर हिंसा फैलाना आसान रहा-मंदिर में गाय के अवशेष डालना या मस्जिद में सुअर का मांस फेंकना, दोनों ही समुदायों के बीच आग लगाने के लिए काफ़ी था। धार्मिक पर्वों में विघ्न डालना भी वैसा ही असर करता। परंतु अतीत में ऐसे हालात में समाज का समझदार और धर्मनिरपेक्ष वर्ग हस्तक्षेप कर शांति बहाल करता था। आज तस्वीर बदल चुकी है। अब धार्मिक पर्व और उत्सव ही हथियार बना दिए गए हैं।

फूट डालो और राज करो की विरासत : 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज हिंदू-मुस्लिम एकता से डर गए। उन्होंने फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई। असल में उन्होंने कोई नई खाई नहीं बनाई, बल्कि पहले से मौजूद अविश्वास और संदेह को गहरा किया। इसी नीति ने सुनिश्चित किया कि हम 1857 के बाद भी 90 वर्षों तक गुलाम रहे। दुखद यह है कि आज हमारे अपने ही चुने हुए शासक चुनावी फायदे के लिए वही रास्ता अपना रहे हैं।

एकता के प्रयास : दो महान भारतीय नेताओं ने समझा कि स्वतंत्रता हिंदू-मुस्लिम एकता के बिना संभव नहीं है। लोकमान्य तिलक ने लखनऊ समझौते के जरिये मुसलमानों को अधिक प्रतिनिधित्व देकर राजनीतिक एकता बनाने की कोशिश की। महात्मा गांधी ने खिलाफत आंदोलन का समर्थन कर सामाजिक एकता साधने का प्रयास किया। उनका मानना था कि इस मांग का समर्थन करके भारतीय मुसलमानों को भरोसा दिलाया जा सकता है कि गैर-मुसलमान भी उनके साथ हैं।

हालांकि दोनों प्रयास अस्थायी ही साबित हुए। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के बड़े हिस्से में दोनों समुदायों को एकजुट रखा, पर 1946 में मुस्लिम लीग ने धर्म के नाम पर राजनीति की शुरुआत की और हिंदू महासभा व आरएसएस ने भी वैसा ही किया। डायरेक्ट एक्शन डे ने कलकत्ता में भीषण नरसंहार भड़काया, जिसके बाद जवाबी हिंसा की श्रृंखला शुरू हो गई। पूर्वी बंगाल से बिहार और पंजाब तक खून-खराबा फैल गया। 1946 के बाद भारत कभी सांप्रदायिक हिंसा से मुक्त नहीं रहा। गांधीजी ने अपनी पूरी शक्ति से इस आग को बुझाने का प्रयास किया, लेकिन असफल रहे। 1947 में भारत स्वतंत्र तो हुआ, पर विभाजित भी हुआ। विभाजन ने राष्ट्र को जन्म के समय ही गहरे घाव दिए। सत्ता हस्तांतरण के साथ ही हिंदू, मुसलमान और सिख, सभी ने हिंसा की और सबने बराबर पीड़ा झेली।

बलिदान और चमत्कार : आजादी के बाद गांधीजी ने दो बार आमरण अनशन कर शांति स्थापित करने का प्रयास किया-पहली बार कलकत्ता में, जिसे कलकत्ता का चमत्कार कहा गया और दूसरी बार जनवरी 1948 में दिल्ली व उत्तर भारत में। लेकिन 30 जनवरी 1948 को उनकी हत्या ने ही भारत को पागलपन से बाहर झकझोरकर निकाला। 'मैं दोनों समुदायों के बीच सबसे मजबूत सीमेंट बनने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरी आकांक्षा है कि अगर जरूरी हो तो अपने रक्त से इन दोनों को जोड़ दूं।' **– महात्मा गांधी, यंग इंडिया, 25 सितम्बर 1924**

गांधीजी की हत्या का सदमा भारत को पचास वर्षों तक संयमित रख पाया। पर उसके बाद नफरत की विचारधारा को स्वीकार्यता मिलने लगी।

नफरत की राजनीति का उभार : 1990 के दशक में हिंदुत्व की राजनीति के उदय ने देश को हिंसा की खाई में धकेला। एल.के. आडवाणी की रथ यात्रा और बाबरी मस्जिद विध्वंस ने देशभर में हिंसा फैलाई। 1992 के बाद ध्रुवीकरण लगातार गहराता गया। गुजरात 2002 में इस राजनीति की प्रयोगशाला बना, जिसने नरेंद्र मोदी को राष्ट्रीय राजनीति में उभारा और 2014 में सत्ता तक पहुंचाया। तब से धार्मिक नफरत और हिंसा राजनीति की धुरी बन गए हैं। सत्ता हासिल करने का सबसे आसान हथियार अब नफरत है। गांधीजी अब नहीं हैं कि हमें सही रास्ते पर लौटा सकें। आज केवल सत्य, प्रेम, करुणा और निर्भयता ही हमें बचा सकते हैं।

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गांधी और धर्मनिरपेक्षता

राम पुनियानी

भारतीय इतिहास को महात्मा गांधी एक मिली-जुली विरासत के तौर पर देखते थे। जहां अंग्रेज यह कहते नहीं थकते थे कि भारत का इतिहास, हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच अनवरत संघर्ष का इतिहास है, वहीं गांधीजी की राय एकदम अलग थी। वे लिखते हैं, 'मुस्लिम शासन के दौरान, दोनों नस्लों (हिन्दुओं व मुसलमानों) के आपसी रिश्ते सौहार्दपूर्ण थे। हमें यह याद रखना होगा कि मुसलमानों का राज कायम होने के पहले ही कई भारतीयों ने इस्लाम अपना लिया था। मेरी यह मान्यता है कि अगर भारत पर मुसलमान राज नहीं करते तब भी यहां मुसलमान होते। इसी तरह, भारत में यदि ब्रिटिश शासन नहीं होता तब भी यहां ईसाई होते। ऐसा कोई सुबूत नहीं है कि ब्रिटिश शासनकाल के पहले, भारत में हिन्दू व मुसलमान आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे' (यंग इंडिया, 26 फरवरी 1925, पृष्ठ- 75, एक बंगाली जमींदार के पत्र पर टिप्पणी करते हुए)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दुओं व मुसलमानों के आपसी रिश्ते पिछले कुछ दशकों से कटु हो गए हैं। इसके पीछे कई कारण हैं। गांधीजी कहते हैं, 'गांवों में आज भी मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच कोई विवाद, कोई झगड़ा नहीं है। अंग्रेजों के आने के पहले तो उनके बीच विवाद होते ही नहीं थे। दिवंगत मौलाना मोहम्मद अली-जो स्वयं इतिहास के ज्ञाता थे-मुझसे कहा करते थे कि...वे अंग्रेजों द्वारा संरक्षित किए गए दस्तावेजों के आधार पर ही यह साबित कर सकते हैं कि औरंगजेब उतना दुष्ट व क्रूर नहीं था, जितना कि अंग्रेज इतिहास उसे बताते हैं। मुगल शासनकाल उतना बुरा नहीं था जितना बुरा उसे अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहास में बताया गया है और कुछ हिन्दू इतिहासविदो ने भी बताया है। हिन्दुओं व मुसलमानों का आपसी विवाद पुराना नहीं है। यह विवाद, अंग्रेजों के भारत आने के बाद शुरू हुआ (यंग इंडिया, 24 दिसम्बर 1931, पृष्ठ-413, लंदन में गोलमेज सम्मेलन में दिए गए भाषण से)।

गांधीजी का अटूट विश्वास था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव पर ही भारतीय राष्ट्र की इमारत खड़ी हो सकती है। 'हम जो एकता चाहते हैं, वह मजबूरी में किया गया समझौता नहीं है। हम दिलों की एकता चाहते हैं। हम ऐसी एकता चाहते हैं जिसका आधार यह स्पष्ट मान्यता हो कि स्वराज, भारत के लिए तब तक एक स्वप्न बना रहेगा जब तक कि हिन्दू व मुसलमान आपसी एकता के कभी न टूटने वाले बंधन में नहीं बंध जाते। हम हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच संधि नहीं चाहते। हिन्दू-मुस्लिम एकता, एक-दूसरे के भय पर आधारित नहीं होनी चाहिए। यह बराबरी पर आधारित होनी चाहिए। यह एक-दूसरे के धर्म के सम्मान पर आधारित होनी चाहिए' (यंग इंडिया, 6 अक्टूबर 1920, पृष्ठ-4)।

धार्मिक सहिष्णुता : धार्मिक सहिष्णुता के प्रति गांधीजी की अटूट प्रतिबद्धता थी। वे सभी लोगों, चाहे वे किसी भी धर्म, पंथ, जाति या रंग के हों, को सम्मान की दृष्टि से देखने के पैरोकार थे। विभिन्न धर्मों के मानने वालों के बीच आपसी संदेह और बैरभाव की दीवारों को ढ़हाने के लिए वे सभी समुदायों के बीच आपसी संवाद पर बहुत जोर देते थे। इसकी जरूरत आज भी है। यही आपसी संदेहों के निवारण का सबसे अच्छा उपाय है। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के बारे में यह सच है। मुसलमानों के नेताओं को आपस में मिल बैठकर इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि हिन्दुओं के प्रति उनके क्या कर्तव्य हैं। जब दोनों समुदाय एक दूसरे के लिए त्याग करने को तत्पर होंगे, केवल अपने अधिकारों के बारे में बात करने की बजाय दूसरे समुदाय के प्रति अपने कर्तव्यों पर विचार करेंगे, तभी दोनों समुदायों के बीच लंबे समय से चले आ रहे मतभेद समाप्त होंगे। दोनों को एक-दूसरे के धर्मों का सम्मान करना चाहिए और अन्य धर्मावलंबियों का बुरा हो, ऐसा विचार भी उनके मन में नहीं आना चाहिए। हमें दोनों समुदायों के सदस्यों को एक दूसरे के बारे

धार्मिक सहिष्णुता के प्रति गांधीजी की अटूट प्रतिबद्धता थी। वे सभी लोगों, चाहे वे किसी भी धर्म, पंथ, जाति या रंग के हों, को सम्मान की दृष्टि से देखने के पैरोकार थे। विभिन्न धर्मों के मानने वालों के बीच आपसी संदेह और बैरभाव की दीवारों को ढ़हाने के लिए वे सभी समुदायों के बीच आपसी संवाद पर बहुत जोर देते थे। इसकी जरूरत आज भी है।

में अपशब्दों का इस्तेमाल करने से बचने की सलाह देनी चाहिए। इस दिशा में गंभीर प्रयास करने से ही दोनों समुदायों का मेल-मिलाप संभव हो सकेगा और उनके बीच की दूरियां खत्म हो सकेंगी। (यंग इंडिया 7 मई 1917)। लगभग एक सदी पहले गांधीजी द्वारा की गई यह टिप्पणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। बल्कि आज शायद उसकी जरूरत उस काल से कहीं ज्यादा है।

चूंकि भारत में विभिन्न धर्मावलंबी निवास करते हैं मात्र इसलिए ऐसा मानना अनुचित होगा कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। किसी देश में विदेशियों के आने से वह राष्ट्र नष्ट नहीं हो जाता बल्कि विदेशी, उस राष्ट्र में घुलमिल जाते हैं, उसका हिस्सा बन जाते हैं। कोई देश एक राष्ट्र तभी बन सकता है जब उसमें दूसरों को अपने में समाहित कर लेने की क्षमता हो। भारत हमेशा से ऐसा ही राष्ट्र रहा है। सच तो यह है कि किसी देश में उतने धर्म होते हैं जितने लोग उस राष्ट्र में निवास करते है परंतु जो लोग राष्ट्रीयता की मूल आत्मा की समझ रखते हैं वे कभी एक-दूसरे के धर्मों में हस्तक्षेप नहीं करते। यदि किसी देश के नागरिक एक-दूसरे में धर्मों में हस्तक्षेप करते हैं तो उस देश को सच्चा राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। अगर हिन्दू यह सोचते हैं कि भारत में केवल हिन्दुओं को रहना चाहिए तो वे सपनों की दुनिया में जी रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई- और वे सभी जिन्होंने इस देश को अपना देश मान लिया है-को इस देश में मिलजुल कर रहना होगा। और किसी कारण से नहीं तो मात्र इसलिए उन्हें आपसी एकता बनानी चाहिए क्योंकि यह उनके हित में है। दुनिया के किसी भी देश में धर्म और राष्ट्रीयता एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं और न ही भारत में कभी भी ऐसा रहा है। (द कंडीशन ऑफ इंडिया : हिन्दूज एंड मोहम्मडंस)।

गांधीजी बहुवादी भारत में सक्रिय थे और वे विभिन्नता को सम्मान की दृष्टि से देखते थे इसलिए उन्हें इस तथ्य का एहसास था कि धार्मिक सहिष्णुता अपनाने के अलावा, भारतीयों के सामने कोई और रास्ता नहीं है। सभी भारतीयों को एक दूसरे की खान-पान की आदतों व पूजा-पद्धतियों का सम्मान करना सीखना होगा। उन्हें उन सभी व्यक्तियों का सम्मान करना होगा जो उन से किसी भी रूप में अलग हैं। 'आपसी सहिष्णुता सभी नस्लों व सभी धर्मों के लोगों के लिए हमेशा से आवश्यक रही है और रहेगी। अगर हिन्दू मुसलमानों की ईश-आराधना के तरीके को स्वीकार नहीं करेंगे उनकी परंपराओं और व्यवहार को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे तो हम कभी शांति से नहीं जी सकेंगे। इसी तरह अगर मुसलमान हिन्दुओं की मूर्तिपूजा व गौ-भक्ति के प्रति असहनशील होंगे तो भी यही होगा।

किसी चीज के प्रति सहिष्णु होने के लिए उसे स्वीकार करना आवश्यक है। मैं मांस भक्षण, मदिरापान व धूम्रपान को बिल्कुल पसंद नहीं करता परंतु मैं उन सभी हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाईयों को पूरे दिल से स्वीकार करने को तैयार हूं जो यह सब करते हैं।... हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच झगड़े की जड़ यही है कि दोनों एक दूसरे पर अपने विचार लादना चाहते हैं।'(यंग इंडिया, 25 फरवरी 1920, पृष्ठ-3)। गांधीजी की दृष्टि में धार्मिक श्रद्धा और भारतीय राष्ट्रवाद परस्पर विरोधी नहीं थे। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे परंतु उनके लिए भारतीय राष्ट्रवाद, देश के हर निवासी की पहली पहचान थी। 'राष्ट्रवाद धर्मों से ऊपर है और इस अर्थ में हम भारतीय पहले हैं और हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या पारसी बाद में।'(यंग इंडिया, 26 जनवरी 1922, पृष्ठ- 22)।

इसके साथ ही गांधीजी की स्पष्ट मान्यता थी कि धर्म, हर व्यक्ति का निजी मसला है और उसे राजनीति में नहीं घसीटा जाना चाहिए। 'अगर धर्म को व्यक्ति का निजी मसला, उसके व उसके ईश्वर के बीच का रिश्ता रहने दिया जाता है तो इससे समाज में एकता को बढ़ावा मिलेगा। धर्म लोगों को एक दूसरे से अलग नहीं करते। वे तो लोगों को एक दूसरे से जोड़ते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज धर्म के अर्थ को इतना तोड़-मरोड़ दिया गया है कि वह अकारण खून बहाने का सबब बन गया है।' (हरिजन, 8 जून 1940, पृष्ठ- 157)। आज फिर से जरूरत है कि हम गांधीजी के इस रास्ते को अपनाएं।

(लेखक : डॉ. राम पुनियानी, जो आईआईटी मुंबई में प्रोफेसर रह चुके हैं, समसामयिक विषयों और लोकतांत्रिक राजनीति पर प्रसिद्ध लेखक हैं)

(पृष्ठ 7 का शेष)

आज की वास्तविकता : आज हिंदू पर्वों का इस्तेमाल हिंसा भड़काने में हो रहा है। मस्जिदों पर हमले होते हैं, मुसलमानों को अपमानित किया जाता है और किसी छोटे-से जवाबी कदम को बड़े पैमाने की हिंसा का औचित्य बना दिया जाता है। पुलिस और प्रशासन भी अब राजनीतिक दबाव और सांप्रदायिकता से ग्रस्त हैं। संघी तत्व प्रशासन, पुलिस और निचली न्यायपालिका तक में गहरे पैठ चुके हैं। ऐसे माहौल में सच्चाई की निडर खोज और अपराधियों का पर्दाफाश करना बेहद जरूरी है। सत्ता में बैठे लोग, जो नफ़रत को राजनीति का औजार बना चुके हैं, वे सच्चाई सामने नहीं लाएंगे। कानून और न्यायपालिका भी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं रह गई हैं। इसलिए यह ज़िम्मेदारी नागरिक समाज और धर्मनिरपेक्ष संगठनों पर है कि वे सत्य को सामने लाएं और समाज को जोड़ने का प्रयास करें। यही गांधीजी के आदर्शों की सच्ची साधना होगी।

निष्कर्ष : नफरत की ताकतों ने भारत को गहरे घाव दिए हैं। अगर हमें जीवित रहना है तो इन घावों को प्रेम के मरहम से भरना होगा। और यह प्रक्रिया केवल सत्य से शुरू हो सकती है। 'हम सोचते हैं कि हम जी रहे हैं, लेकिन बंटे हुए हम मृत से भी बदतर हैं। हिंदू सोचता है कि मुसलमान से लड़कर वह हिंदू धर्म को लाभ पहुंचा रहा है और मुसलमान सोचता है कि हिंदू से लड़कर वह इस्लाम को मज़बूत कर रहा है, लेकिन दोनों ही अपने-अपने धर्म को नष्ट कर रहे हैं।'

■■■■

गांधी-अंबेडकर संवाद : वैचारिक मित्रता मतभेद और भविष्य का समन्वय

डॉ. संजय मंगला गोपाल

महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय इतिहास के दो ऐसे महानायक हैं, जिनका योगदान स्वतंत्रता आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन दोनों में अद्वितीय रहा है। इन दोनों के बीच वैचारिक मतभेद अवश्य थे, परंतु उनके संबंधों की नींव में परस्पर सम्मान, संवाद और देशहित की समान चिंता भी मौजूद थी। आज जब भारतीय समाज में समावेशी राजनीति और सामाजिक समरसता की चुनौतियां सामने हैं, तब गांधी-अंबेडकर संबंधों का अध्ययन भविष्य के लिए दिशा दिखाने वाला है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : गांधीजी का जीवनकाल (1869-1948) और अंबेडकर जी का जीवनकाल (1891-1956) लगभग एक ही दौर में रहा। यद्यपि दोनों में एक पीढ़ी का अंतर था, फिर भी वे एक-दूसरे को बराबरी का नेता मानते थे। 1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे और चंपारण, खेड़ा, असहयोग आंदोलन, दांडी मार्च व भारत छोड़ो आंदोलन जैसे निर्णायक संघर्षों से स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी।

इसी दौरान अंबेडकरजी ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर 1920 के दशक से सामाजिक आंदोलनों की अगुवाई शुरू की। महाड तालाब सत्याग्रह (1927) और नाशिक के कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन ने अस्पृश्यता के विरुद्ध उनकी लड़ाई को ऐतिहासिक रूप दिया। 1935 में उन्होंने घोषणा की- 'मैं हिंदू धर्म में जन्मा जरूर हूं, लेकिन हिंदू धर्म में मरूंगा नहीं।'

गांधीजी का आग्रह था- 'पहले स्वतंत्रता, फिर सामाजिक सुधार।' वहीं अंबेडकरजी कहते थे- 'बिना सामाजिक समता, स्वतंत्रता अधूरी है।' ये दोनों आग्रह स्वतंत्रता संग्राम में परस्पर पूरक सिद्ध हुए।

पहली मुलाकात और परस्पर संवाद : गांधीजी और अंबेडकरजी की औपचारिक मुलाकात 1931 में मणिभवन, मुंबई में हुई। प्रारंभिक संवाद में ही अंबेडकरजी ने पूछा-'हम अछूतों का मातृभूमि में स्थान कहां है?' इस प्रश्न ने गांधीजी को झकझोर दिया। बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि अंबेडकरजी को समझने में उनसे गलती हुई।

गांधीजी और अंबेडकरजी की औपचारिक मुलाकात 1931 में मणिभवन, मुंबई में हुई।

♦♦

प्रारंभिक संवाद में ही अंबेडकरजी ने पूछा-'हम अछूतों का मातृभूमि में स्थान कहां है?' इस प्रश्न ने गांधीजी को झकझोर दिया।

♦♦

बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि अंबेडकरजी को समझने में उनसे गलती हुई।

गांधीजी ने इंग्लैंड में राउंड टेबल कांफ्रेंस के दौरान अंबेडकरजी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए कहा- 'हिंदू धर्म की विषमतापूर्ण परंपरा के बावजूद उन्होंने हिंसा का मार्ग नहीं चुना, यह उनके संयम का प्रतीक है।' इसी तरह 1927 के महाड आंदोलन के समय गांधीजी ने कहा- 'अस्पृश्यता की अमानवीय परंपरा बनाए रखने की गलती सवर्ण समाज की है।'

विचारों का तुलनात्मक मूल्यांकन : गांधीजी सभी भारतीयों के नेता थे, जिनके लिए स्वतंत्रता, सादगी, स्वावलंबन और समरसता प्रमुख मूल्य थे। अंबेडकरजी का मुख्य फोकस था- समान अधिकार, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र। गांधीजी ने आंदोलन का हथियार 'सत्याग्रह' दिया, तो अंबेडकरजी ने पानी और मंदिर प्रवेश जैसे बुनियादी मुद्दों को आंदोलन का आधार बनाया।

♦♦

गांधीजी और अंबेडकरजी की औपचारिक मुलाकात 1931 में मणिभवन, मुंबई में हुई। प्रारंभिक संवाद में ही अंबेडकरजी ने पूछा-'हम अछूतों का मातृभूमि में स्थान कहां है?' इस प्रश्न ने गांधीजी को झकझोर दिया। बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि अंबेडकरजी को समझने में उनसे गलती हुई। गांधीजी ने इंग्लैंड में राउंड टेबल कांफ्रेंस के दौरान अंबेडकरजी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए कहा- 'हिंदू धर्म की विषमतापूर्ण परंपरा के बावजूद उन्होंने हिंसा का मार्ग नहीं चुना, यह उनके संयम का प्रतीक है।' इसी तरह 1927 के महाड आंदोलन के समय गांधीजी ने कहा- 'अस्पृश्यता की अमानवीय परंपरा बनाए रखने की गलती सवर्ण समाज की है।' विचारों का तुलनात्मक मूल्यांकन : गांधीजी सभी भारतीयों के नेता थे, जिनके लिए स्वतंत्रता, सादगी, स्वावलंबन और समरसता प्रमुख मूल्य थे। अंबेडकरजी का मुख्य फोकस था- समान अधिकार, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र। गांधीजी ने आंदोलन का हथियार 'सत्याग्रह' दिया, तो अंबेडकरजी ने पानी और मंदिर प्रवेश जैसे बुनियादी मुद्दों को आंदोलन का आधार बनाया।

♦♦

समरसता प्रमुख मूल्य थे। अंबेडकरजी का मुख्य फोकस था- समान अधिकार, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र।

गांधीजी ने आंदोलन का हथियार 'सत्याग्रह' दिया, तो अंबेडकरजी ने पानी और मंदिर प्रवेश जैसे बुनियादी मुद्दों को आंदोलन का आधार बनाया। गांधीजी ने नमक को प्रतीक बनाया, तो अंबेडकरजी ने पानी को। दोनों का लक्ष्य एक ही था-समाज से अन्याय और विषमता का अंत।

गांधीजी वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक तो थे, परंतु उन्होंने लगातार आत्मसुधार और बदलाव का रास्ता चुना। उन्होंने आश्रम में सभी के लिए शौचालय सफाई अनिवार्य की, अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया और अछूतों को 'हरिजन' कहकर सम्मानजनक उपाधि दी।

अंबेडकरजी ने धर्मग्रंथों की आलोचना करते हुए जातिप्रथा की जड़ों पर प्रहार किया। उन्होंने पीड़ितों को संघर्ष के लिए तैयार किया। वहीं गांधीजी ने सवर्ण समाज में अपराधबोध जगाने और उन्हें सुधार की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया।

अर्थात, दोनों की रणनीतियां भिन्न थीं-एक ने शोषितों को संगठित किया, तो दूसरे ने शोषकों को सुधरने पर मजबूर किया।

पुणे समझौता : सबसे चर्चित विवाद 1932 में अलग निर्वाचिका (Separate Electorate) के प्रश्न पर हुआ। अंबेडकरजी ने दलितों के लिए स्वतंत्र निर्वाचिका की मांग की, लेकिन गांधीजी को लगा इससे हिंदू समाज में स्थायी विभाजन होगा। उन्होंने विरोधस्वरूप अनशन शुरू कर दिया।

बाद में तेजबहादुर सप्रु के मध्यस्थता से समझौता हुआ-अलग निर्वाचिका के बजाय संयुक्त निर्वाचिका, परंतु आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ाई गई। यह 'पुणे करार' कहलाया।

अंबेडकरजी ने कहा- 'शुरुआत में मतभेद थे, परंतु अंतत: गांधीजी मेरे पक्ष में खड़े हुए। मैं उनका आभारी हूं।' यद्यपि उन्हें आश्चर्य रहा कि यही रुख गांधीजी ने राउंड टेबल कांफ्रेंस में क्यों नहीं अपनाया।

गांधीजी के अनशन के प्रभाव : गांधीजी का अनशन देशभर में सामाजिक क्रांति का सूत्रधार बना। अनेक मंदिर दलितों के लिए खुले, कुएं-तालाब साझा हुए, स्कूलों में दलित-सवर्ण बच्चे साथ बैठे। यहां तक कि नेहरूजी की धार्मिक मां और बनारस

हिंदू विश्वविद्यालय के कट्टर कुलपति ने भी दलितों के साथ सहभोजन किया।

इस माहौल ने समाज में आत्मशुद्धि और प्रायश्चित की भावना जगाई। यह स्पष्ट हुआ कि गांधीजी की नैतिक शक्ति और अंबेडकरजी की वैचारिक दृढ़ता मिलकर समाज में परिवर्तन ला सकती है।

आज़ादी और संविधान : स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी-अंबेडकर संवाद ने समावेशी राजनीति की नींव रखी। आज़ादी के बाद संविधान सभा में कांग्रेस का बहुमत और अंबेडकरजी की विद्वत्ता एक साथ आई। परिणामस्वरूप भारत को एक ऐसा संविधान मिला जिसने लोकतंत्र, समानता और सामाजिक न्याय को संवैधानिक आधार दिया। गांधीजी की हत्या और बाद में अंबेडकरजी का बौद्ध धर्म ग्रहण, दोनों घटनाएं उनके जीवन-संघर्ष की त्रासदीपूर्ण परिणति थीं। फिर भी, उनके वैचारिक समन्वय ने भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे को स्थायी रूप से प्रभावित किया।

भविष्य की जिम्मेदारी : आज जब न तो अंबेडकरजी की रिपब्लिकन पार्टी सशक्त रूप से मौजूद है और न ही लोहियाजी का समाजवादी आंदोलन, तब गांधी-अंबेडकर समन्वय की जिम्मेदारी कांग्रेस और जनांदोलनों के राष्ट्रीय मंच जैसी पहलों पर है। राहुल गांधी की यात्राएं यदि सचमुच सामाजिक न्याय और समता की दिशा में प्रतिबद्ध हैं, तो यह समन्वय आगे बढ़ सकता है। संसदीय राजनीति के साथ-साथ जनांदोलनों की भूमिका भी अहम होगी।

भारत में कोई उग्रवादी विचारधारा लंबे समय तक नहीं टिकती। स्थायी राह वही है, जो प्रेम, भाईचारा, मध्यमार्ग और मानवतावाद पर आधारित हो। यही गांधी-अंबेडकर समन्वय का सार है और यही हमारी सामूहिक जिम्मेदारी भी।

निष्कर्ष : गांधी और अंबेडकर दो अलग धाराओं के प्रतीक थे- एक नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति से समाज को झकझोरते थे, तो दूसरा शिक्षा और तर्क से शोषितों को सशक्त बनाते थे। दोनों में मतभेद रहे, लेकिन उद्देश्य एक ही था- एक ऐसे भारत का निर्माण, जहां स्वतंत्रता के साथ समानता और भाईचारा भी हो।

आज की पीढ़ी के लिए जरूरी है कि वह इन दोनों महापुरुषों की मित्रता और मतभेद से सीखकर भविष्य के लिए समावेशी समाज का रास्ता बनाए। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

(लेखक परिचय : डॉ. संजय मंगला गोपाल महाराष्ट्र में ठाणे शहर के निवासी हैं। पिछले तीस सालों से गांधी, फुले, अंबेडकरजी के विचारों पर चलने वाले 'समता विचार प्रसारक संस्था' के संस्थापक ट्रस्टी रहे हैं। संपर्क : sansahil@gmail.com)

गांधीवाद की हत्या का प्रयास राष्ट्र के खिलाफ अपराध

प्रो. प्रदीप माथुर

महात्मा गांधी केवल एक व्यक्ति नहीं थे, बल्कि वे एक विचार, एक आंदोलन और एक मानवीय दर्शन थे। उनका सत्य और अहिंसा का मार्ग आज भी पूरी दुनिया के लिए प्रेरणा है। किंतु यह विडंबना है कि स्वतंत्र भारत में, उन्हीं गांधी की विचारधारा को कमजोर करने और उनके हत्यारे को महिमामंडित करने की प्रवृत्ति पनप रही है। यह केवल गांधीवाद पर नहीं, बल्कि भारत की आत्मा और उसके लोकतांत्रिक व बहुलतावादी चरित्र पर सीधा प्रहार है। आज आवश्यकता इस बात की है कि गांधीवाद की हत्या का प्रयास करने वालों को राष्ट्र के खिलाफ अपराध मानकर कड़ी सजा दी जाए।

गांधीवाद-बहुलता और मानवीयता का दर्शन : गांधीवादी विचारधारा उदार लोकतंत्र, सर्वधर्म समभाव और वसुधैव कुटुंबकम की भावना पर आधारित है। यह हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं को आत्मसात करने का प्रयास है। संकीर्ण मानसिकता, नफरत और आपसी टकराव से ऊपर उठकर गांधीवाद उच्च स्तरीय वैचारिक विमर्श का मंच प्रदान करता है। यही वह वैचारिक कवच है जो आरएसएस-भाजपा के अधिनायकवादी प्रवाह और विभाजनकारी राजनीति को चुनौती दे सकता है।

राष्ट्रवाद का विकृत रूप और लोकतंत्र पर हमला : पाकिस्तान में आतंकवादियों पर भारतीय सेना की कार्रवाई के बाद राष्ट्रवादी स्वर का उभार स्वाभाविक था। लेकिन चिंताजनक बात यह रही कि भाजपा-आरएसएस ने इसे अल्पसंख्यकों, प्रगतिशील संगठनों, स्वतंत्र मीडिया और लोकतांत्रिक विचारों के खिलाफ नफरत फैलाने का औजार बना लिया। आलोचना या असहमति को राष्ट्रद्रोह और आतंकवाद से जोड़कर विपक्ष व सामाजिक कार्यकर्ताओं की आवाज दबाने का प्रयास हुआ। यह लोकतंत्र की जड़ों पर चोट है।

लोकतांत्रिक परंपरा में सत्ता और विपक्ष के बीच वाद-विवाद स्वाभाविक है। किंतु मोदी शासन के पिछले दशक में समीकरण उलट गए। कमजोर विपक्ष को आतंकवाद और राष्ट्रद्रोह जैसे लांछनों से बदनाम किया गया। यह वही रणनीति है जिसे हिटलर और उसके प्रचार मंत्री गोयबल्स ने अपनाया था- 'एक झूठ को सौ बार दोहराओ, वह सच लगने लगेगा।'

असली राष्ट्रद्रोही कौन : इतिहास गवाह है कि महात्मा गांधी की हत्या करने वाला नाथूराम गोडसे न केवल गांधी का, बल्कि संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं का विरोधी था। 1945 में प्रकाशित अग्रणी अखबार के कार्टून में यह स्पष्ट दिखता है। सवाल यह है कि आज जो लोग विपक्ष को राष्ट्रद्रोही कहते हैं, क्या उनमें इतना नैतिक साहस है कि गोडसे को खुलेआम आतंकवादी और राष्ट्रद्रोही कह सकें?

गांधीवाद की हत्या का प्रयास- सबसे बड़ा खतरा : आज गांधी जयंती पर हमें यह प्रश्न करना चाहिए कि गांधी के सत्य और अहिंसा आधारित मानवतावादी मूल्यों का प्रचार-प्रसार कैसे हो। सबसे बड़ी चुनौती है कि कुछ निहित स्वार्थी लोग गांधीवाद की हत्या कर, गोडसे की स्तुति कर रहे हैं। यह केवल शर्मनाक ही नहीं, बल्कि खतरनाक भी है।

संकीर्ण हिंदुत्व के नाम पर गांधी की वैचारिक हत्या का प्रयास विडंबनापूर्ण है। गांधी एक उदार हिंदू थे, किंतु कभी हिंदू-विरोधी नहीं। फिर भी एक हिंदू ने ही षड्यंत्र कर उनकी हत्या की और आज कुछ लोग उसी हत्यारे का गुणगान कर रहे हैं। स्पष्ट है कि ये लोग न सच्चे हिंदू हैं, न हिंदू समाज के हितैषी।

गांधीवाद की रक्षा-कानूनी और सामाजिक जिम्मेदारी : आज समय की मांग है कि गांधी और उनकी विचारधारा पर होने वाले हमलों को रोकने के लिए कड़े कानून बनाए जाएं। गांधी पर अपमानजनक आरोप लगाना, उनके हत्यारे को महिमामंडित करना और गांधीवाद को कमजोर करने की कोशिशें दंडनीय अपराध घोषित हों। गांधी का अपमान राष्ट्र का अपमान है। वे किसी दल या समुदाय के नहीं, बल्कि संपूर्ण भारतीयता के प्रतीक थे। इसलिए जो लोग अपने को राष्ट्रवादी बताते हुए गांधी का अपमान करते हैं, वे असल में राष्ट्र के छद्म शत्रु हैं।

निष्कर्ष : भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई और आधुनिक राष्ट्र-राज्य की बुनियाद गांधीवाद पर टिकी है। यदि हमने गांधीवाद को कमजोर होने दिया तो यह हमारी स्वतंत्रता, लोकतंत्र और सामाजिक एकता पर सीधा आघात होगा। अब समय आ गया है कि गांधीवाद की हत्या का प्रयास करने वालों को सख्ती से रोका जाए और यह संदेश दिया जाए कि गांधी भारत की आत्मा हैं-उन पर हमला राष्ट्रद्रोह से कम नहीं।

गांधीवादी विचारधारा उदार लोकतंत्र, सर्वधर्म समभाव और वसुधैव कुटुंबकम की भावना पर आधारित है। यह हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं को आत्मसात करने का प्रयास है। संकीर्ण मानसिकता, नफरत और आपसी टकराव से ऊपर उठकर गांधीवाद उच्च स्तरीय वैचारिक विमर्श का मंच प्रदान करता है। यही वह वैचारिक कवच है जो आरएसएस-भाजपा के अधिनायकवादी प्रवाह और विभाजनकारी राजनीति को चुनौती दे सकता है।

आज समय की मांग है कि गांधी और उनकी विचारधारा पर होने वाले हमलों को रोकने के लिए कड़े कानून बनाए जाएं। गांधी पर अपमानजनक आरोप लगाना, उनके हत्यारे को महिमामंडित करना और गांधीवाद को कमजोर करने की कोशिशें दंडनीय अपराध घोषित हों। गांधी का अपमान राष्ट्र का अपमान है।

नाटक के जरिए समाज को बदलने की साधना : सुरेन्या अय्यर

क्या नाटक सिर्फ मंचन तक सीमित हैं, या वे सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी बन सकते हैं? यह सवाल तब और प्रासंगिक हो जाता है जब हम सुरेन्या अय्यर जैसी नाट्यकर्मी और विचारक की रचनात्मक यात्रा पर नजर डालते हैं।

चंद्र कुमार एडवोकेट

सुरेन्या अय्यर केवल एक नाटककार या निर्देशक भर नहीं हैं, बल्कि एक विचार, एक दृष्टि और एक आंदोलन हैं। वे लेखिका हैं, कार्यकर्ता हैं, अधिवक्ता हैं और **भाग्यम आर्ट्स एंड आइडियाज की संस्थापक** भी। यह मंच उन्होंने केवल नाट्य प्रस्तुतियों के लिए नहीं, बल्कि कलाकारों और विचारों को एक ऐसा घर देने के लिए बनाया है, जहां रचनात्मकता खुलकर सांस ले सके।

संगीत से नाटक तक का सफर : सुरेन्या अय्यर की कलात्मक यात्रा की शुरुआत संगीत से हुई। कैराना घराने की हिंदुस्तानी शास्त्रीय परंपरा में प्रशिक्षित होकर संगीत से लेकर नाटक तक अपनी पहचान बनाई। शिक्षा का दायरा भी बेहद व्यापक रहा- दिल्ली के सेंट स्टीफंस कॉलेज से लेकर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय तक। यह पृष्ठभूमि उनकी रचनाओं को गहराई देती है।

उनकी कलम और मंच दोनों भारत और दक्षिण एशिया के इतिहास, कला और सौंदर्यशास्त्र की कहानियां सुनाते हैं। चाहे बौद्ध और जैन कला की गहनता हो, दक्षिणी लघु चित्रकला की बारीकियां हों या जापानी रंगमंच का नाटकीय सौंदर्य- सुरेन्या सबको अपने दृष्टिकोण में पिरो लेती हैं।

वे स्वयं को धर्मनिरपेक्षवादी, नेहरूवियन और गांधीवादी मानती हैं। उनकी रचनाओं में बहुलवाद की ताकत है, खुली बहस की आजादी है और गांधीवादी संघर्ष की लौ भी। उनका मानना है कि कला केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज को बदलने की शक्ति भी रखती है।

गांधी जयंती पर विशेष प्रस्तुतियां : हर साल गांधी जयंती पर उनकी संस्था विशेष नाट्य प्रस्तुतियां करती है। इस बार वे दो नाटक लेकर आई हैं-

'सत्याग्रह' और 'किंग गांधी'।

'सत्याग्रह' गांधीजी की जीवन यात्रा और उनके आंदोलनों पर आधारित है। इसमें उनके दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़ने और स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न चरणों- चंपारण, खेड़ा, अहमदाबाद मिल मजदूर संघर्ष, असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन-को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें गांधीजी की सोच को नए दृष्टिकोण से समझाने की कोशिश की गई है।

सुरेन्या कहती हैं, 'हमारी समझ में गांधीजी केवल अहिंसक आंदोलन तक सीमित रहे। लेकिन उनके विचार इससे कहीं आगे थे। उनका मानना था कि संघर्ष का उद्देश्य केवल किसी वर्ग की मांग पूरी करना नहीं, बल्कि पूरे समाज का उद्धार होना चाहिए। और यह जीत तब पूरी होती है जब विरोधी भी आपकी सत्य की शक्ति से सहमत हो जाए।'

'किंग गांधी' नाटक गांधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर के विचारों को जोड़ता है। मार्टिन लूथर किंग अमेरिकी सिविल राइट्स मूवमेंट के महान नेता थे और गांधीजी के गहरे प्रशंसक। इस नाटक में अमेरिकी अश्वेत संघर्ष और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की समानताओं को दिखाया गया है।

इस प्रस्तुति की खासियत यह है कि इसमें पश्चिमी संगीत और नृत्य का प्रयोग किया गया है। लाइव जैज और ब्लूज बैंड, बैले और समकालीन नृत्य इसे अंतरराष्ट्रीय रंग देते हैं। सुरेन्या मानती हैं कि ब्लैक स्ट्रगल की पीड़ा उनके गीतों और कविताओं में गहराई से झलकती है, इसलिए यह संगीत

नाटक का अभिन्न हिस्सा है।

कला और राजनीति का संगम : सुरेन्या के नाटकों में केवल इतिहास की पुनर्कथन नहीं होती, बल्कि वे आज के संदर्भ में गांधीजी और किंग जैसे नेताओं के विचारों को पुन: जीवित करती हैं। उनका मानना है कि कला तभी सार्थक है जब वह दर्शकों को मनोरंजन के साथ सोचने पर मजबूर करे।

'अगर मनोरंजन नहीं है तो वो कला नहीं है, और अगर सोचने पर मजबूर नहीं करती तो उसका असर अधूरा है। रंगमंच इसलिए रंगमंच है क्योंकि उसमें जीवन के सारे रंग समाहित हैं।' उनके नाटकों में विभिन्न आंदोलनों को कभी नृत्य, कभी गीत और कभी छोटे-छोटे नाट्य प्रसंगों से प्रस्तुत किया जाता है। इस बहुआयामी प्रस्तुति से दर्शक न केवल इतिहास को देखते हैं बल्कि उसे महसूस भी करते हैं।

कलाकार और संगीत : 'सत्याग्रह' में भरतनाट्यम और कथकली नर्तक शामिल हैं, जबकि संगीत की जिम्मेदारी उस्ताद आरिफ अली खान की है, जिनका संबंध किराना घराने से है। 'किंग गांधी' में लाइव बैंड, सैक्सोफोन, ड्रम्स, समकालीन नृत्य और पैंटोमाइम कलाकारों का संगम देखने को मिलेगा। यह प्रयोगात्मकता ही सुरेन्या की पहचान है।

प्रेरणा का स्रोत : जब उनसे प्रेरणा के बारे में पूछा गया तो उनका जवाब सीधा और सशक्त था- 'भारत ही मुझे प्रेरित करता है। गांधीजी कहा करते थे कि भारत पूरे विश्व के लिए एक संदेश है। यही संदेश जीवित रखना मेरी जिम्मेदारी है।'

क्यों जरूरी हैं ऐसे नाटक : आज के दौर में जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पारंपरिक कला विधाओं को पीछे धकेल दिया है, ऐसे नाटक हमें अपनी जड़ों की याद दिलाते हैं। गांधी और किंग जैसे नेता न केवल अपने-अपने देशों में बल्कि पूरी दुनिया के लिए संदेश लेकर आए। उनके संघर्ष से यह शिक्षा मिलती है कि अहिंसा, सत्य और न्याय केवल विचार नहीं बल्कि जीवंत क्रांतियां हैं। सुरेन्या अय्यर का प्रयास इन्हीं विचारों को मंच पर पुनर्जीवित करना है। वे हमें याद दिलाती हैं कि नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को बदलने का औजार भी है।

प्रस्तुति की जानकारी : दोनों नाटकों का मंचन त्रिवेणी ऑडिटोरियम में होगा- 'सत्याग्रह' : 27 सितम्बर। 'किंग गांधी' : 1 अक्टूबर, शाम 6.30 बजे से। प्रवेश निशुल्क और सभी के लिए खुला है।

निष्कर्ष : सुरेन्या अय्यर की यात्रा यह साबित करती है कि कला और नाटक आज भी समाज में बदलाव का शक्तिशाली साधन हो सकते हैं। उनके नाटक अतीत और वर्तमान के बीच संवाद रचते हैं और हमें यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि भारत की असली आत्मा क्या है और हमारी विरासत का आज की दुनिया में क्या अर्थ है। उनकी कला हमें यह विश्वास दिलाती है कि अगर गांधी और किंग जैसे नेताओं की शिक्षाएं मंच पर जीवित रह सकती हैं, तो वे समाज के दिलों और दिमागों में भी हमेशा जीवित रहेंगी।

(लेखक मीडियामैप न्यूज नेटवर्क के प्रबंध संपादक हैं)

'सत्याग्रह' गांधीजी की जीवन यात्रा और उनके आंदोलनों पर आधारित है। इसमें उनके दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़ने और स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न चरणों-चंपारण, खेड़ा, अहमदाबाद मिल मजदूर संघर्ष, असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन-को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें गांधीजी की सोच को नए दृष्टिकोण से समझाने की कोशिश की गई है।

सुरेन्या कहती हैं, 'हमारी समझ में गांधीजी केवल अहिंसक आंदोलन तक सीमित रहे। लेकिन उनके विचार इससे कहीं आगे थे। उनका मानना था कि संघर्ष का उद्देश्य केवल किसी वर्ग की मांग पूरी करना नहीं, बल्कि पूरे समाज का उद्धार होना चाहिए। और यह जीत तब पूरी होती है जब विरोधी भी आपकी सत्य की शक्ति से सहमत हो जाए।'

'किंग गांधी' नाटक गांधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर के विचारों को जोड़ता है। मार्टिन लूथर किंग अमेरिकी सिविल राइट्स मूवमेंट के महान नेता थे और गांधीजी के गहरे प्रशंसक। इस नाटक में अमेरिकी अश्वेत संघर्ष और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की समानताओं को दिखाया गया है।

इस प्रस्तुति की खासियत यह है कि इसमें पश्चिमी संगीत और नृत्य का प्रयोग किया गया है। लाइव जैज और ब्लूज बैंड, बैले और समकालीन नृत्य इसे अंतरराष्ट्रीय रंग देते हैं। सुरेन्या मानती हैं कि ब्लैक स्ट्रगल की पीड़ा उनके गीतों और कविताओं में गहराई से झलकती है, इसलिए यह संगीत नाटक का अभिन्न हिस्सा है।

जन्म दिवस पर विशेष

आज के सियासी दौर में शास्त्री जी की प्रासंगिकता

सत्ता नहीं, सेवा का दूसरा नाम है लाल बहादुर शास्त्री। आज राजनीति धनबल और छल-बल की चकाचौंध में डूबी हुई है, तब शास्त्री जी की सादगी और ईमानदारी नेताओं को चुभती भी है और ललकारती भी है। शास्त्री जी ने करके दिखाया कि नेता वह नहीं जो मंच से बड़े -बड़े वादे करे, बल्कि वह है जो जनता के आंसू पोंछे और सैनिक-किसान के पसीने को सलाम करे। उनका जीवन हमें याद दिलाता है कि राजनीति सेवा का मार्ग है, व्यापार नहीं। जब राजनीति सत्ता, शोहरत और कुर्सी की भूख में सिमट कर रह गई हो, तब शास्त्री जी का नाम हमें आइना दिखाता है। ये वही शख्स थे, जिन्होंने प्रधानमंत्री होते हुए भी न विलासिता चुनी, न तामझाम। वे जनता के सच्चे सेवक थे और उन्होंने वह ऐतिहासिक नारा गढ़ा- 'जय जवान, जय किसान।' यह नारा सिर्फ शब्द नहीं था, बल्कि आज भारत की धड़कन बन गया। श्री लाल बहादुर शास्त्री जी की जयंती के अवसर पर हमारे प्रबंध संपादक **चंद्र कुमार एडवोकेट** द्वारा **श्री सुनील शास्त्री जी** का साक्षात्कार।

आप अपनी आयु के अमृतकाल और देश की आजादी के अमृतकाल दोनों का अनुभव कर चुके हैं। लगभग पांच दशकों का आपका राजनीतिक सफर है। राजनीति का असली रास्ता क्या है- सेवा का संकल्प या सत्ता का खेल?

आपके प्रश्न में ही उत्तर छिपा है। राजनीति का असली मार्ग केवल सेवा है। बाबूजी (लाल बहादुर शास्त्री) ने सत्ता को कभी भोग का साधन नहीं, बल्कि सेवा का माध्यम माना। यही राजनीति की असली परिभाषा है।

आज राजनीति में ईमानदारी और सादगी पर सवाल उठते हैं। क्या बाबूजी आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं?

बिल्कुल। ब्लैकबोर्ड जितना काला होता है, चाक उतना ही चमकता है। बाबूजी की सादगी, अनुशासन और जनता के प्रति निष्ठा आज भी हमें याद दिलाती है कि सच्चा नेता वही है, जो खुद आदर्श प्रस्तुत करे और उदाहरण बने।

आदर्श सुनने में अच्छे लगते हैं, लेकिन राजनीति तो व्यावहारिकता पर चलती है। आज निवेश, तकनीक और वैश्विक दृष्टिकोण की जरूरत है। क्या शास्त्री जी के आदर्श पुराने नहीं हो गए?

ईमानदारी और सादगी कभी पुरानी हो सकती हैं क्या? जनता को आज भी ऐसा नेता चाहिए जो काम से आदर्श प्रस्तुत करे, न कि केवल कैमरे के सामने मुस्कुराकर फोटो खिंचवाए।

जनता का पेट आदर्शों से नहीं भरेगा, उसे रोजगार भी चाहिए।

रोजगार तभी मिलेगा जब नेता ईमानदारी से काम करेगा। बाबूजी प्रधानमंत्री होते हुए

भी हमारे लिए कार नहीं खरीद पाए। आज सत्ता में आते ही नेता गाड़ियों और सुविधाओं की होड़ में लग जाते हैं। फर्क यही है- आदर्श बनाम अवसरवाद। बाबूजी ने 'जय जवान, जय किसान' कहा और जनता ने उसे अपनाया। आज का नेतृत्व क्या कह रहा है? 'जय चुनाव, जय प्रचार'।

लेकिन केवल आदर्शों से सब ठीक नहीं होता।

जो खुद आदर्श प्रस्तुत करेगा, वही व्यवस्था बदल सकता है। बाबूजी ने करके दिखाया। उनके जीवन का मंत्र था-

- सत्ता नहीं, सेवा
- भाषण नहीं, आचरण
- दिखावा नहीं, संकल्प

लेकिन आज तो उल्टा हो रहा है- सत्ता, भाषण और दिखावा।

बाबूजी साइकिल से चलते थे, जनता के बीच रहते थे। आज नेता बड़े-बड़े काफिलों में चलते हैं और जनता से दूर होते जा रहे हैं। यही फर्क है सेवा और स्वार्थ का।

आज की राजनीति दिखावे में डूबी है। शास्त्री जी जैसे आदर्श कहां से आएंगे?

शास्त्री जी कोई किताब के किस्से नहीं, बल्कि लोकतंत्र की जरूरत हैं। 1965 का युद्ध उनकी सादगी और निर्णायक नेतृत्व का प्रमाण है। बिना शोर-शराबे के उन्होंने 'जय जवान, जय किसान' दिया, जो आज भी देश की धड़कन है। सादगी कमजोरी नहीं, बल्कि ताकत है।

लेकिन क्या आज की अंतरराष्ट्रीय राजनीति में शास्त्री जी की सादगी काम आ सकती है?

बाबूजी ने सत्ता को सेवा का माध्यम बनाया, अधिकार का उपभोग नहीं। आज जब राजनीति चुनाव जीतने का खेल बन गई है, उनकी प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। उन्होंने कहा था सत्ता कर्तव्य है, अधिकार नहीं। क्या

आज के नेता ऐसा सोचते हैं?

यानी राजनीति शास्त्री जी के आदर्शों से भटक चुकी है और नेताओं को उनसे सीखने की जरूरत है?

बिल्कुल। अगर सादगी से देश नहीं चलता तो क्या भ्रष्टाचार, जातिवाद और अवसरवाद से देश चलेगा? बाबूजी साइकिल से चलते थे, फिर भी युद्ध जिताया। उनका 'जय जवान, जय किसान' भारत को आत्मनिर्भर बनाने की बुनियाद बना। उन्होंने दिखाया कि देश भाषणों से नहीं, आचरण और त्याग से चलता है। एक समय उन्होंने अन्न का त्याग किया, और पूरे देश ने उनका अनुसरण किया। यही है सच्चा नेतृत्व।

आज की राजनीति स्वार्थ और विभाजन पर टिकी है। ऐसे में शास्त्री जी के आदर्श कैसे समझे जाएंगे?

यही वक्त है जब उनकी प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। देश तभी सुरक्षित है जब जवान सीमा पर है और किसान खेत में। 'जय जवान, जय किसान' आज भी खाद्य सुरक्षा, आत्मनिर्भर भारत और राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में उतना ही जरूरी है।

बाबूजी हमें याद दिलाते हैं कि लोकतंत्र की आत्मा विपक्ष को दुश्मन नहीं, सहयोगी मानने में है। अगर आज की राजनीति को सच्चा, सेवाभावी और ईमानदार बनाना है तो शास्त्री जी के आदर्शों पर लौटना ही होगा।

एंकर– बहुत-बहुत धन्यवाद सुनील जी। आपने बाबूजी के जीवन और आदर्शों को जिस गहराई से समझाया, वह आज की राजनीति के लिए सचमुच प्रेरणा है। उनके जन्मदिन पर हम एक बार फिर दोहराते हैं– 'जय जवान, जय किसान' और 'जय शास्त्री जी के आदर्श'।

बाबूजी की सादगी, अनुशासन और जनता के प्रति निष्ठा आज भी हमें याद दिलाती है कि सच्चा नेता वही है, जो खुद आदर्श प्रस्तुत करे और उदाहरण बने।

■■■

शास्त्री जी कोई किताब के किस्से नहीं, बल्कि लोकतंत्र की जरूरत हैं। 1965 का युद्ध उनकी सादगी और निर्णायक नेतृत्व का प्रमाण है। बिना शोर-शराबे के उन्होंने 'जय जवान, जय किसान' दिया, जो आज भी देश की धड़कन है। सादगी कमजोरी नहीं, बल्कि ताकत है।

■■■

बाबूजी हमें याद दिलाते हैं कि लोकतंत्र की आत्मा विपक्ष को दुश्मन नहीं, सहयोगी मानने में है। अगर आज की राजनीति को सच्चा, सेवाभावी और ईमानदार बनाना है तो शास्त्री जी के आदर्शों पर लौटना ही होगा।

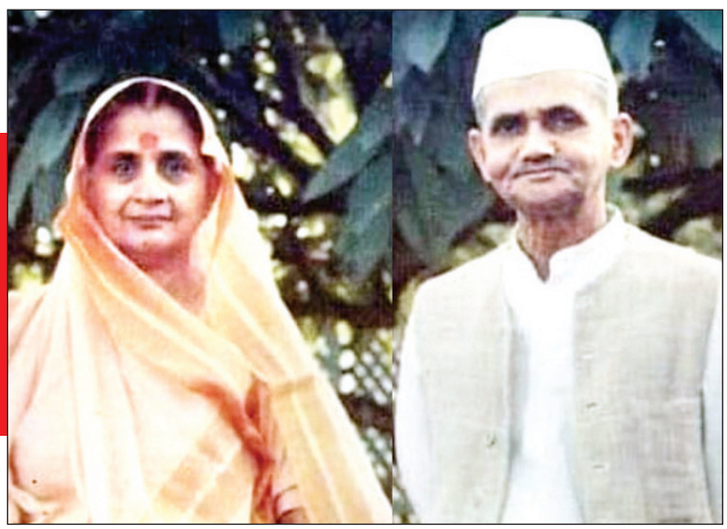

मोदी का तीसरा कार्यकाल : भारत के सामने चुनौतियां, मूल्यांकन व अवसर

अपने तीसरे कार्यकाल की शुरुआत के साथ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी स्वतंत्रता-उत्तर भारत के लोकतांत्रिक शासकों में एक अद्वितीय स्थान प्राप्त कर चुके हैं। कई भविष्यवाणियों के बावजूद, जिन्होंने उनकी सरकार के शीघ्र पतन की बात कही थी, वे लगातार शासन में बने रहने में सफल रहे। लगातार चुनावी सफलताओं के बावजूद भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के वरिष्ठ दिग्गज नेता मोदी को इस बात के लिए माफ नहीं कर पाए कि उन्होंने 75 वर्ष से अधिक आयु के नेताओं को सक्रिय राजनीति से बाहर कर दिया।

यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मोदी को चाहे असफलताएं मिली हों या सफलताएं, दोनों ही स्थितियों में भाग्य उनका साथ देता रहा है। 2014 में भाजपा को पूर्ण बहुमत मिलने पर वे निर्विवाद नेता बने। 2024 के चुनाव में भाजपा को केवल 220 सीटें मिलीं, तब भी वे प्रधानमंत्री बने- लेकिन इस बार राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के सर्वमान्य नेता के रूप में। इस स्थिति में भाजपा संसदीय दल की भूमिका महज़ उनकी नेतृत्व क्षमता की पुष्टि करने वाली संस्था बनकर रह गई। भाजपा का बहुमत न ला पाना उन्हें भाजपा-आरएसएस के उस एजेंडे से मुक्त कर देता है, जिसके तहत 75 वर्ष से अधिक उम्र के नेताओं को राजनीति से बाहर किया जाता रहा है। आरएसएस का यह कहना कि मोदी इस आयु-सीमा के बंधन में नहीं हैं, राजनीतिक हलकों में मजाक का विषय बन गया है, क्योंकि अब वे एनडीए के नेता हैं।

सकारात्मक कदमों की जरूरत : अपने 12 वर्षों के शासन के साथ मोदी अब किशोरावस्था की दहलीज पर पहुँच चुके

गोपाल मिश्रा

हैं। यह उनके और उनके समर्थकों के लिए अवसर है कि यदि वे सही रणनीतियाँ बनाते हैं तो मोदी हाल के दशकों में सबसे सफल राजनेता बन सकते हैं। लेकिन यदि वे केवल खोखली बयानबाज़ी और झूठे आख्यानों पर टिके रहे तो संभव है कि इतिहास में उनका नाम बिना किसी शिलालेख के मिट जाए। यह समय उनके लिए तय करने का है कि वे आई.के. गुजराल और देवगौड़ा जैसे अल्पकालिक प्रधानमंत्रियों की श्रेणी में गिने जाना चाहते हैं या इंदिरा गांधी और पी.वी. नरसिम्हा राव की तरह याद किए जाएँ, जिन्होंने उपमहाद्वीप के भूगोल को बदला और राज्य पूँजीवाद की पवित्र गाय को छूते हुए देश की अर्थव्यवस्था को खोला।

असल में, नेहरू-गांधी परिवार के विरुद्ध मोदी की अपमानजनक टिप्पणियाँ उन्हें देश का निर्विवाद नेता नहीं बना पाईं। उनका तीसरा कार्यकाल उन्हें यह अद्वितीय अवसर देता है कि वे 140 करोड़ की आबादी वाले देश का प्रतिनिधि नेता साबित हों। भारत के राजनीतिक परिदृश्य का बौद्धिक शून्य न केवल दयनीय है बल्कि चिंताजनक भी है। भाजपा जहाँ अपराधी पृष्ठभूमि वाले विधायकों को चुन रही है, वहीं कांग्रेस और अन्य दल भी अपमानजनक

चुनावी सफलताओं के बावजूद भाजपा और आरएसएस के वरिष्ठ दिग्गज नेता मोदी को इस बात के लिए माफ नहीं कर पाए कि उन्होंने 75 वर्ष से अधिक आयु के नेताओं को सक्रिय राजनीति से बाहर कर दिया। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मोदी को चाहे असफलताएं मिली हों या सफलताएं, दोनों ही स्थितियों में भाग्य उनका साथ देता रहा है। 2014 में भाजपा को पूर्ण बहुमत मिलने पर वे निर्विवाद नेता बने। 2024 के चुनाव में भाजपा को केवल 220 सीटें मिलीं, तब भी वे प्रधानमंत्री बने- लेकिन इस बार राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के सर्वमान्य नेता के रूप में। इस स्थिति में भाजपा संसदीय दल की भूमिका महज़ उनकी नेतृत्व क्षमता की पुष्टि करने वाली संस्था बनकर रह गई। भाजपा का बहुमत न ला पाना उन्हें भाजपा-आरएसएस के उस एजेंडे से मुक्त कर देता है, जिसके तहत 75 वर्ष से अधिक उम्र के नेताओं को राजनीति से बाहर किया जाता रहा है। आरएसएस का यह कहना कि मोदी इस आयु-सीमा के बंधन में नहीं हैं, राजनीतिक हलकों में मजाक का विषय बन गया है, क्योंकि अब वे एनडीए के नेता हैं। अपने 12 वर्षों के शासन के साथ मोदी अब किशोरावस्था की दहलीज पर पहुँच चुके हैं। यह उनके और उनके समर्थकों के लिए अवसर है कि यदि वे सही रणनीतियाँ बनाते हैं तो मोदी हाल के दशकों में सबसे सफल राजनेता बन सकते हैं।

टिप्पणियों और सांप्रदायिक विचारधाराओं में लिप्त हैं।

देश के राजनीतिक पतन की शुरुआत शाहबानो मामले से हुई। उस समय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने संविधान में संशोधन कर विधवा को अपने पति से भरण-पोषण का अधिकार दिलाने से इंकार कर दिया। उन्होंने अरिफ मोहम्मद खान की सलाह भी नज़रअंदाज़ कर दी, जो मुस्लिम समाज में सुधार के पक्षधर थे। बाद में उन्होंने अयोध्या में राम जन्मभूमि के ताले भी खुलवाए। इसके बाद वी.पी. सिंह के संक्षिप्त कार्यकाल में जातीय राजनीति ने जोर पकड़ा, जिसे मोदी के राजनीतिक गुरु लालकृष्ण आडवाणी ने चुनौती दी।

किशोरावस्था की चुनौतियां : माता-पिता जानते हैं कि किशोरावस्था जीवन के निर्माण की अवस्था होती है। यदि मार्गदर्शक सावधान न हों तो भविष्य अंधकारमय हो सकता है। आज की स्थिति में और अधिक निराशा और अनिश्चितता इसलिए है कि आरएसएस में वैचारिक प्रतिबद्धता लगभग समाप्त हो चुकी है। मोदी शासन राजनीतिक स्थिरता अवश्य प्रदान करता है, लेकिन देश पर अनिश्चितता का साया छाया हुआ है।

सत्तर के दशक के अंत में मोदी ने चुपचाप एक स्वयंसेवक और भाजपा कार्यकर्ता के रूप में उभरना शुरू किया। निजी वार्तालापों में वे अपने पत्रकार मित्रों से कहते थे, 'जब मैं प्रधानमंत्री बनूँगा तो भारत को बदल दूँगा।' लेखक समेत बहुत से पत्रकारों ने उनकी इस महत्वाकांक्षा को गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन आज वे सचमुच सर्वोच्च पद पर हैं और स्थिरता भी लाए हैं। किंतु सत्ता की होड़ में आरएसएस और भाजपा दोनों ने अपनी वैचारिक पहचान खो दी है। चुनावों में धन की भूख ने उन्हें बौद्धिकों से दूर कर दिया। आज भले ही लोग उन विचारकों को पसंद न करें, पर प्रो. राजेंद्र सिंह और नानाजी देशमुख (आरएसएस) तथा मुरली मनोहर जोशी (भाजपा) जैसे लोग अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय थे।

अंतिम चरण : समकालीन इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते लेखक ने मोदी के पहले दो कार्यकाल का मूल्यांकन विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं पर छोड़ दिया है, लेकिन तीसरे कार्यकाल की चुनौतियों पर नज़र रखना आवश्यक है। हाल ही में राष्ट्र के नाम उनके संबोधन में जीएसटी से जुड़े कुछ राहत उपाय ज़रूर दिखे, परंतु भारतीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने की ठोस नीति का कोई संकेत नहीं मिला। यह दर्शाता है कि मोदी शासन मज़बूत वैचारिक प्रतिबद्धताओं से विहीन है और केवल नौकरशाहों और मीडिया के झूठे आख्यानों से सफलता का आभास कराया जा रहा है।

अब देखना यह है कि मोदी शासन नई वास्तविकताओं को समझ पाता है या नहीं। 2014 में जो बच्चे किशोरावस्था की दहलीज़ पर थे, वे आज युवा हो चुके हैं। वे अब मीडिया के प्रचार और खोखले भाषणों से प्रभावित नहीं होते। यहाँ तक कि अच्छी नीतियाँ भी अनावश्यक मीडिया प्रचार के कारण दब जाती हैं। आने वाले तीन वर्ष भारत और मोदी दोनों के लिए निर्णायक होंगे। मोदी यदि देश को सशक्त करने का सपना पूरा नहीं कर पाए, तो वे भी गुजराल या देवगौड़ा की तरह गुमनामी में खो सकते हैं।

भारत में विपक्ष की कमजोरी और उसकी रचनात्मक आलोचना का अभाव इस स्थिति को और कठिन बना देता है। अब लोगों की यही आशा है कि केवल मोदी ही सुधारात्मक कदम उठा सकते हैं। जीएसटी में राहत तभी कारगर होगी, जब उसे उद्योग और कृषि को सक्रिय सहयोग के साथ लागू किया जाए। यदि सरकार मीडिया-प्रचार में ही उलझी रही तो चीनी कंपनियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था पर स्थायी कब्ज़ा जमा सकती हैं।

(गोपाल मिश्रा एक अनुभवी पत्रकार, राजनीतिक विश्लेषक, लेखक और मीडिया कार्यकर्ता हैं, अब वह ज्यादातर भू-राजनीतिक मामलों पर लिखते हैं)

देश के राजनीतिक पतन की शुरुआत शाहबानो मामले से हुई। उस समय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने संविधान में संशोधन कर विधवा को अपने पति से भरण-पोषण का अधिकार दिलाने से इंकार कर दिया। उन्होंने अरिफ मोहम्मद खान की सलाह भी नज़रअंदाज़ कर दी, जो मुस्लिम समाज में सुधार के पक्षधर थे। बाद में उन्होंने अयोध्या में राम जन्मभूमि के ताले भी खुलवाए। इसके बाद वी.पी. सिंह के संक्षिप्त कार्यकाल में जातीय राजनीति ने जोर पकड़ा, जिसे मोदी के राजनीतिक गुरु लालकृष्ण आडवाणी ने चुनौती 000

आज की स्थिति में और अधिक निराशा और अनिश्चितता इसलिए है कि आरएसएस में वैचारिक प्रतिबद्धता लगभग समाप्त हो चुकी है। मोदी शासन राजनीतिक स्थिरता अवश्य प्रदान करता है, लेकिन देश पर अनिश्चितता का साया छाया हुआ है।

यासीन मलिक : क्या वह राज्य की चालों का शिकार...?

'मुझे शांति और सौहार्द का दूत समझा जाना चाहिए, लेकिन इसके विपरीत मुझे आतंकवादी के रूप में पेश किया गया।' जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट (JKLF) के अध्यक्ष यासीन मलिक के ये शब्द राष्ट्र-राज्य और जनता के बीच के संबंधों पर गंभीर सवाल खड़े करते हैं।

फिलहाल तिहाड़ जेल में बंद मलिक को एनआईए की अदालत ने देश के खिलाफ साजिश और युद्ध छेड़ने के आरोप में दोषी ठहराया है। उन्होंने 81 पन्नों का हलफनामा दाखिल किया है जिसमें उन्होंने बताया है कि भारतीय राज्य ने किस तरह उनका इस्तेमाल किया और फिर 2019 में धारा 370 हटाए जाने के बाद मोदी सरकार ने उन्हें 'बेकार' समझकर किनारे कर दिया।

मलिक के बयान साफ करते हैं कि राज्य अपने घोषित उद्देश्यों को साधने के लिए नागरिकों का इस्तेमाल करता है, उन्हें कभी सम्मानित करता है तो कभी इनाम देता है, लेकिन जब वे बोझ लगने लगते हैं तो त्याग भी देता है।

मलिक ने दिल्ली हाईकोर्ट को बताया कि 2006 में एक वरिष्ठ खुफिया ब्यूरो (IB) अधिकारी ने उन्हें लश्कर-ए-तैयबा के संस्थापक हाफिज सईद से मिलने के लिए कहा था।

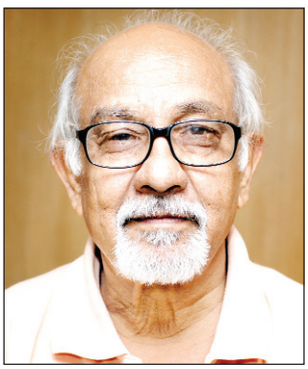

डॉ. सतीश मिश्रा

28 अगस्त को दायर हलफ़नामे में मलिक ने स्पष्ट किया कि उनकी सईद से मुलाकात उस व्यापक प्रयास का हिस्सा थी, जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा शुरू और मनमोहन सिंह द्वारा आगे बढ़ाई गई कश्मीर शांति प्रक्रिया में आतंकवादी संगठनों के नेताओं को शामिल करने की कोशिश हो रही थी।

हलफ़नामे में दावा किया गया है कि आईबी के विशेष निदेशक वी.के. जोशी ने पाकिस्तान जाने से पहले दिल्ली में मलिक से मुलाकात की थी। मलिक 2005 के भयंकर भूकंप के बाद राहत कार्यों के लिए समर्थन जुटाने पाकिस्तान जाने की योजना बना रहे थे, जिसमें कम से कम 73,000 लोग मारे गए थे।

मलिक ने कहा, 'मुझे विशेष रूप से हाफिज सईद और पाकिस्तान के अन्य आतंकी नेताओं से मिलने का अनुरोध किया गया, क्योंकि यह तर्क दिया गया कि आतंकवाद और शांति वार्ता एक साथ नहीं चल सकते, खासकर जब (2006) दिल्ली में बम धमाके हुए थे।'

पाकिस्तान से लौटने के बाद जोशी ने दिल्ली के एक होटल में उनसे विस्तार से बातचीत की। बाद में मलिक ने तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार एम.के.नारायणन की मौजूदगी में अपनी मुलाकातों की जानकारी दी।

मलिक का कहना है, 'मैंने उन्हें (सिंह को) संभावनाओं से अवगत कराया, उन्होंने मेरे प्रयासों के लिए धन्यवाद दिया। लेकिन इस बैठक को मेरे खिलाफ अलग संदर्भ में पेश किया गया। यह शुद्ध धोखे का मामला था, जहां शांति को मजबूत करने के बावजूद मुझे आतंकवादी करार दिया गया ताकि भाजपा अपने राजनीतिक एजेंडे को साध सके।'

मलिक ने अदालत को बताया कि 1990 में गिरफ्तारी के बाद उन्होंने सात प्रधानमंत्रियों- वी.पी. सिंह, चंद्रशेखर, पी.वी. नरसिंह राव, एच.डी. देवगौड़ा, आई.के. गुजराल, अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह- के साथ काम किया। उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल और पूर्व गृह मंत्री पी. चिदंबरम सहित कई वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकातों का भी उल्लेख किया।

मलिक ने बताया कि उन्हें घरेलू और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर मुद्दे पर बोलने के लिए सरकारें समय-समय पर प्रोत्साहित करती रहीं। वाजपेयी सरकार ने 2001 में उन्हें पासपोर्ट दिया। वे अमेरिका, ब्रिटेन, सऊदी अरब और पाकिस्तान तक गए और कश्मीर समस्या का शांतिपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया।

एनआईए ने मलिक पर पाकिस्तान की सैन्य नेतृत्व से संपर्क और पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से पत्राचार का आरोप लगाया है। हलफ़नामे में बताया गया है कि 2016 में शरीफ ने गिलगित-बाल्टिस्तान को पाकिस्तान में मिलाने के विरोध पर मलिक को पत्र लिखा था। अगले ही दिन

तत्कालीन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने इसी मुद्दे पर चिंता जताई थी।

हलफ़नामे में मलिक ने कहा, 'अगर मैं पाकिस्तान के इशारे पर हिंसा भड़का रहा था, तो भारत की विदेश मंत्री वही चिंता क्यों जतातीं?'

उन्होंने 1986 में 'स्वतंत्र कश्मीर' के पोस्टर लगाने पर हुई अपनी पहली गिरफ्तारी, 1987 के विवादित विधानसभा चुनाव में मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट (MUF) के साथ भागीदारी और चुनावी धांधली से लोकतांत्रिक तरीकों से भरोसा टूटने का भी जिक्र किया।

पाकिस्तान में हथियार प्रशिक्षण लेने के बाद 1990 में वे गिरफ्तार हुए और दिल्ली की मेहरौली जेल में बंद हुए। वहां उन्हें शांति के रास्ते पर लौटने के लिए राजनीतिक नेताओं, सिविल सोसाइटी और खुफिया एजेंसियों ने मनाया। उन्होंने अमेरिकी और ब्रिटिश राजनयिकों के प्रस्ताव पर भी सहमति जताई और 1994 में जेल से छूटने के बाद शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक संघर्ष शुरू किया।

मलिक ने बताया कि उन पर लगे 32 आतंकवादी मामलों में उन्हें एक ही आदेश से जमानत दी गई थी और Successive सरकारों ने उन मामलों को नहीं आगे बढ़ाया, जिनमें मुफ्ती सईद की बेटी रुबैया सईद का अपहरण और 1990 में चार वायुसेना कर्मियों की हत्या के मामले शामिल थे।

मलिक ने 2019 के बाद केंद्र सरकार की नीति परिवर्तन को 'पूर्ण विश्वासघात' बताया और कहा कि यह युद्धविराम समझौते की आत्मा और भावना के खिलाफ है।

उन्होंने धीरूभाई अंबानी के साथ अपनी बातचीत, कश्मीरी पंडितों के पलायन के लिए तत्कालीन राज्यपाल जगमोहन को जिम्मेदार ठहराना और कुछ आरएसएस नेताओं व शंकराचार्यों से मुलाकातों का भी जिक्र किया।

कुछ विशेष आरोपों- जैसे एयरफोर्स कर्मियों की हत्या, पाकिस्तानी हैंडलर से साजिश, हवालों के पैसे लेना- को भी उन्होंने पूरी तरह नकारा।

2019 में पीएसए के तहत गिरफ्तारी से लेकर एनआईए की पूछताछ, जबरन कबूलनामे और अदालत में मौत की सज़ा की मांग तक की घटनाओं का विस्तार से वर्णन हलफ़नामे में किया गया है।

सुरक्षा विशेषज्ञ मानते हैं कि मलिक के दावों में सच्चाई के तत्व हैं, लेकिन राज्य और उसकी नीतियों के कारण कोई खुलकर समर्थन नहीं करता।

मेरे लेखन का उद्देश्य यही है कि जिम्मेदार नागरिक समझें कि राज्य की एजेंसियां किस तरह विशाल बजट के साथ काम करती हैं और उनकी जवाबदेही पर शायद ही कभी सवाल उठाए जाते हैं।

सुरक्षा एजेंसियां और जासूस राज्य-व्यवस्था का हिस्सा हैं, लेकिन नैतिक प्रश्न तब उठता है जब एक इच्छुक व्यक्ति को गद्दार बना दिया जाता है। यदि भारत को एक जिम्मेदार शक्ति के रूप में देखा जाना है तो आज निष्पक्ष बहस की आवश्यकता है।

(डॉ. सतीश मिश्रा वरिष्ठ पत्रकार और अनुभवी राजनीतिक विश्लेषक हैं)

♦ ♦

फिलहाल तिहाड़ जेल में बंद मलिक को एनआईए की अदालत ने देश के खिलाफ साजिश और युद्ध छेड़ने के आरोप में दोषी ठहराया है। उन्होंने 81 पन्नों का हलफनामा दाखिल किया है जिसमें उन्होंने बताया है कि भारतीय राज्य ने किस तरह उनका इस्तेमाल किया और फिर 2019 में धारा 370 हटाए जाने के बाद मोदी सरकार ने उन्हें 'बेकार' समझकर किनारे कर दिया। मलिक के बयान साफ करते हैं कि राज्य अपने घोषित उद्देश्यों को साधने के लिए नागरिकों का इस्तेमाल करता है, उन्हें कभी सम्मानित करता है तो कभी इनाम देता है, लेकिन जब वे बोझ लगने लगते हैं तो त्याग भी देता है। मलिक ने दिल्ली हाईकोर्ट को बताया कि 2006 में एक वरिष्ठ खुफिया ब्यूरो (ब्लैक) अधिकारी ने उन्हें लश्कर-ए-तैयबा के संस्थापक हाफिज सईद से मिलने के लिए कहा था। 28 अगस्त को दायर हलफ़नामे में मलिक ने स्पष्ट किया कि उनकी सईद से मुलाकात उस व्यापक प्रयास का हिस्सा थी, जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा शुरू और मनमोहन सिंह द्वारा आगे बढ़ाई गई कश्मीर शांति प्रक्रिया में आतंकवादी संगठनों के नेताओं को शामिल करने की कोशिश हो रही थी। हलफ़नामे में दावा किया गया है कि आईबी के विशेष निदेशक वी.के. जोशी ने पाकिस्तान जाने से पहले दिल्ली में मलिक से मुलाकात की थी। मलिक 2005 के भयंकर भूकंप के बाद राहत कार्यों के लिए समर्थन जुटाने पाकिस्तान जाने की योजना बना रहे थे, जिसमें कम से कम 73,000 लोग मारे गए थे।

♦ ♦

लद्दाख का मूक ज्वालामुखी

तुषार गांधी से बातचीत : अधूरे वादे, बढ़ता गुस्सा और लोकतंत्र का भविष्य

अगस्त 2019 में संसद ने ऐतिहासिक निर्णय लिया। अनुच्छेद 370 को हटाकर जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त कर दिया गया और राज्य को दो हिस्सों में बांटकर केंद्र शासित प्रदेश बना दिया गया-जम्मू-कश्मीर और लद्दाख।

सरकार ने इसे 'पूर्ण एकीकरण' बताया, लेकिन पांच साल बाद लद्दाख में हालात बेहद निराशाजनक हैं। न विधानसभा है, न प्रतिनिधित्व, न ही संविधान की छठी अनुसूची में शामिल करने का वादा पूरा हुआ। अब गुस्सा खुलकर सड़कों पर दिख रहा है। इन्हीं सवालों पर चर्चा के लिए डॉ. सलीम खान ने महात्मा गांधी के प्रपौत्र और सामाजिक कार्यकर्ता तुषार गांधी से विशेष बातचीत की।

प्रश्न : लद्दाख की मौजूदा स्थिति को आप कैसे देखते हैं?

तुषार गांधी : बिल्कुल साफ है। बीजेपी सरकार ने लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने और स्वायत्तता का भरोसा दिया था। लेकिन अब वे वादे तोड़ दिए गए हैं। उल्टा, जो लोग शांतिपूर्ण आंदोलन कर रहे हैं, उन्हें 'शहरी नक्सल' या देशविरोधी करार दिया जा रहा है। सोचिए, सोनम वांगचुक जैसे सम्मानित व्यक्ति जब भूख हड़ताल करते हैं तो सरकार उन्हें गंभीरता से लेने के बजाय शक और दुश्मनी की नज़र से देखती है।

डॉ. सलीम खान

इससे जनता का भरोसा टूटता है और डर फैलता है।

प्रश्न : केंद्र सरकार की बातचीत टालने की नीति पर आपका क्या कहना है?

तुषार गांधी : यह सीधा अहंकार है। लोकतंत्र में संवाद बराबरी से होना चाहिए, लेकिन केंद्र का रवैया राजशाही जैसा है। वे कहते हैं, 'हम जब चाहेंगे तब बात करेंगे।' यह लोकतंत्र नहीं, तानाशाही है।

गृह मंत्री अमित शाह का राजनीति का तरीका खासतौर पर लोकतांत्रिक सिद्धांतों की अनदेखी करता है। जनता की बात सुनना सरकार का कर्तव्य है, लेकिन बीजेपी चाहती है कि जनता उसकी इच्छानुसार चले। यह खतरनाक है।

प्रश्न : क्या यह समस्या केवल लद्दाख तक सीमित है?

तुषार गांधी : नहीं। यह पैटर्न पूरे देश

बीजेपी सरकार ने लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने और स्वायत्तता का भरोसा दिया था। लेकिन अब वे वादे तोड़ दिए गए हैं। उल्टा, जो लोग शांतिपूर्ण आंदोलन कर रहे हैं, उन्हें 'शहरी नक्सल' या देशविरोधी करार दिया जा रहा है। सोचिए, सोनम वांगचुक जैसे सम्मानित व्यक्ति जब भूख हड़ताल करते हैं तो सरकार उन्हें गंभीरता से लेने के बजाय शक और दुश्मनी की नज़र से देखती है। इससे जनता का भरोसा टूटता है और डर फैलता है।

लोकतंत्र में संवाद बराबरी से होना चाहिए, लेकिन केंद्र का रवैया राजशाही जैसा है। वे कहते हैं, 'हम जब चाहेंगे तब बात करेंगे।' यह लोकतंत्र नहीं, तानाशाही है। गृह मंत्री अमित शाह का राजनीति का तरीका खासतौर पर लोकतांत्रिक सिद्धांतों की अनदेखी करता है। जनता की बात सुनना सरकार का कर्तव्य है, लेकिन बीजेपी चाहती है कि जनता उसकी इच्छानुसार चले। यह खतरनाक है।

वादा पूरा न करना और वादा तोड़ना, दोनों अलग बातें हैं। बीजेपी ने अपने घोषणा पत्र में साफ लिखा था कि लद्दाख को छठी अनुसूची का संरक्षण मिलेगा। अब वे पीछे हट रहे हैं। यह सीधा छल है। पूर्वोत्तर के कई राज्यों को यह संरक्षण मिला हुआ है। फिर लद्दाख को क्यों नहीं? यह भेदभाव है।

युवाओं से लेकर किसानों और सीमा पर रहने वाले समुदायों तक-सब प्रभावित होंगे। बीजेपी और आरएसएस ने सौ साल से बाँटने की राजनीति की है। अब उसी का ज़हर फैल रहा है। और यह ज़हर केवल लद्दाख तक सीमित नहीं रहेगा।

में दिख रहा है। मणिपुर पहले से ही संकट में है। अब वही बीज लद्दाख में बोए जा रहे हैं। दोनों ही संवेदनशील सीमा क्षेत्र हैं। अगर समझदारी से हल नहीं निकाला गया तो पूरा हिमालयी इलाका अस्थिर हो सकता है।

प्रश्न : लद्दाखियों की मुख्य मांगें क्या हैं?

तुषार गांधी : चार प्रमुख मांगें हैं-

1. छठी अनुसूची में शामिल करना ताकि ज़मीन, संस्कृति और संसाधन सुरक्षित रहें।

2. पूर्ण राज्य का दर्जा या कम से कम निर्वाचित विधानसभा।

3. लेह और कारगिल के लिए अलग-अलग दो लोकसभा सीटें।

4. बढ़ती बेरोज़गारी से निपटने के लिए रोज़गार गारंटी।

सरकार तीसरी और चौथी मांग पर बात करने को तैयार दिखती है, लेकिन असली मुद्दे-छठी अनुसूची और स्वायत्तता-पर चुप्पी साधे हुए है। यह बेईमानी है।

प्रश्न : क्या आपको लगता है कि बीजेपी ने धोखा दिया है?

तुषार गांधी : बिल्कुल। वादा पूरा न करना और वादा तोड़ना, दोनों अलग बातें हैं। बीजेपी ने अपने घोषणा पत्र में साफ लिखा था कि लद्दाख को छठी अनुसूची का संरक्षण मिलेगा। अब वे पीछे हट रहे हैं। यह सीधा छल है। पूर्वोत्तर के कई राज्यों को यह संरक्षण मिला हुआ है। फिर लद्दाख को क्यों नहीं? यह भेदभाव है।

प्रश्न : क्या असंतोष केवल लद्दाख तक सीमित है?

तुषार गांधी : नहीं। पहले विरोध केवल कश्मीर घाटी तक था। अब यह लद्दाख तक फैल गया है। आगे यह जम्मू तक जाएगा। जम्मू के लोग भी मानते हैं कि अनुच्छेद 370 हटने से उन्हें ज़्यादा नुकसान हुआ है। लोगों को डर है कि बाहरी लोग उनकी ज़मीन और पहचान छीन लेंगे। यह डर जायज़ है और सरकार की नीतियों ने इसे और गहरा कर दिया है।

प्रश्न : सोनम वांगचुक के आंदोलन वापस लेने के फैसले को आप कैसे देखते हैं?

तुषार गांधी : यह उनकी भूल थी। हिंसा उनकी सत्याग्रह की वजह से नहीं, बल्कि सरकार की नीतियों के कारण हुई। शांतिपूर्ण आंदोलन कभी नहीं छोड़ना चाहिए। पीछे हटने से आंदोलन की नैतिक ताक़त कमज़ोर होती है।

प्रश्न : राहुल गांधी ने लोकतंत्र को नेपाल जैसी स्थिति में जाने की चेतावनी दी थी। आप क्या सोचते हैं?

तुषार गांधी : राहुल गांधी ने कोई भड़काऊ बात नहीं कही। उन्होंने सिर्फ़ चेतावनी दी। आज भारत के युवा गुस्से में हैं। बेरोज़गारी, महँगी शिक्षा और टूटे वादे उन्हें बेचैन कर रहे हैं। धर्म को नशे की तरह इस्तेमाल किया गया है, लेकिन नशा हमेशा नहीं टिकता। जब असली समस्याएँ सामने आती हैं, तो गुस्सा भड़क उठता है। बिहार, यूपी और अन्य राज्यों में युवाओं का आक्रोश बार-बार फूट चुका है- रेलवे भर्ती हो या अग्निवीर योजना।

प्रश्न : क्या यह केवल लद्दाख का संकट है या पूरे देश की तस्वीर?

तुषार गांधी : यह राष्ट्रीय संकट है।

1. महाराष्ट्र में मराठा आंदोलन ने अन्य जातियों को भी जोड़ लिया।

2. मणिपुर की स्थिति विस्फोटक बनी हुई है।

3. बेरोज़गारी और शिक्षा की पहुंच न होने से हर जगह युवा निराश हैं।

सरकार असली समस्याओं से ध्यान भटकाने के लिए सांप्रदायिक राजनीति करती है। लेकिन सपने बेचकर देश नहीं चलाया जा सकता। लोग अंततः जागेंगे।

प्रश्न : इस पूरे संकट की कीमत कौन चुकाएगा?

तुषार गांधी : दुर्भाग्य से इसकी क़ीमत हम सबको चुकानी पड़ेगी। युवाओं से लेकर किसानों और सीमा पर रहने वाले समुदायों तक-सब प्रभावित होंगे। बीजेपी और आरएसएस ने सौ साल से बाँटने की राजनीति की है। अब उसी का ज़हर फैल रहा है। और यह ज़हर केवल लद्दाख तक सीमित नहीं रहेगा।

निष्कर्ष- एक चेतावनी : लद्दाख का आंदोलन केवल क्षेत्रीय मुद्दा नहीं है, यह पूरे भारत के लोकतंत्र के लिए चेतावनी है। जब सरकार वादे तोड़ती है, जनता की आवाज़ दबाती है और अहंकार से पेश आती है, तो असंतोष ज्वालामुखी बनकर फूटता है। तुषार गांधी का संदेश साफ़ है- अगर सरकार ने समय रहते संवाद और भरोसा बहाल नहीं किया, तो यह असंतोष हिमालय से उठकर पूरे भारत में फैल जाएगा।

लद्दाख आंदोलन क्यों भड़का और कैसे बना राष्ट्रीय मुद्दा

डॉ. मुज़फ्फर हुसैन ग़ज़ाली

लद्दाख, जिसे अक्सर शांति, बौद्ध संस्कृति और अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य का प्रतीक माना जाता है, इन दिनों अशांति का केंद्र बना हुआ है। सोनम वांगचुक के नेतृत्व में चल रहा शांतिपूर्ण आंदोलन अचानक हिंसक हो उठा। भूख हड़ताल पर बैठे प्रदर्शनकारियों में से दो की तबीयत बिगड़ने और अस्पताल ले जाने के बाद युवाओं का गुस्सा फूट पड़ा। उन्होंने न केवल नारेबाजी की बल्कि भाजपा के कार्यालय में आग भी लगा दी।

राहुल गांधी ने पहले ही चेताया था कि लद्दाख में हालात विस्फोटक हो सकते हैं, लेकिन केंद्र सरकार ने इसे नजरअंदाज़ किया। आज वही चेतावनी सच होती दिख रही है।

आंदोलन की पृष्ठभूमि : लद्दाख एपेक्स बॉडी और कारगिल डेमोक्रेटिक एलायंस ने चार प्रमुख मांगों को लेकर भूख हड़ताल शुरू की थी–

- लद्दाख को राज्य का दर्जा दिया जाए।
- संविधान की छठी अनुसूची में लद्दाख को शामिल किया जाए।
- लेह और कारगिल को अलग-अलग संसदीय क्षेत्र बनाया जाए।
- रोजगार और संसाधनों में स्थानीय लोगों को प्राथमिकता दी जाए।

ये मांगें वर्षों से उठाई जा रही हैं। लेकिन 2019 में धारा 370 हटने और लद्दाख को जम्मू-कश्मीर से अलग कर केंद्र शासित प्रदेश बनाए जाने के बाद स्थानीय लोगों ने उम्मीद की थी कि उन्हें अधिक अधिकार और बेहतर अवसर मिलेंगे। शुरुआत में खुशी दिखी, लेकिन जल्द ही निराशा में बदल गई। न तो विधानसभा दी गई, न ही स्थानीय निकायों को वास्तविक शक्ति। बाहरी निवेशकों और उद्योगपतियों के जमीन और संसाधनों पर दखल ने असुरक्षा और असंतोष को और बढ़ा दिया।

हिंसा क्यों हुई : राजनीतिक विश्लेषक पियूष पंत के अनुसार, आंदोलन का हिंसक रूप लेना प्रशासनिक विफलता का परिणाम है।

'लोकतंत्र में हिंसा की कोई जगह नहीं, लेकिन जब सरकार लगातार उपेक्षा करे, तो गुस्सा भड़कना तय है। 2019 में लोग खुश थे कि अलग केंद्र शासित प्रदेश बनकर उन्हें स्वायत्तता मिलेगी। पर हुआ इसके उलट– अधिकार छीने गए, विधानसभा नहीं दी गई और वादे भुला दिए गए।'

शांतिपूर्ण आंदोलन की अनदेखी, वांगचुक की भूख हड़ताल का कोई असर न होना और प्रदर्शनकारियों पर गोली चलने की घटना ने हालात को विस्फोटक बना दिया। गोलीबारी में तीन युवाओं की मौत हुई, जिससे आक्रोश और गहरा गया।

सोनम वांगचुक की भूमिका : वांगचुक, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण और शिक्षा क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों के लिए जाने जाते हैं, हमेशा अहिंसा और गांधीवादी तरीकों पर जोर देते आए हैं। उन्होंने कई बार भूख हड़ताल की, दिल्ली तक पैदल मार्च किया, और सेना के लिए सौर ऊर्जा समाधान उपलब्ध कराए।

उनका कहना है : 'मैंने हमेशा शांति और अहिंसा की वकालत की है। हिंसा आंदोलन को कमजोर करती है। लेकिन सरकार अगर सुनने को तैयार न हो तो लोगों में गुस्सा भरना स्वाभाविक है।' वांगचुक की गिरफ्तारी और उनके एनजीओ पर कार्रवाई ने स्थानीय लोगों की नाराज़गी को और भड़का दिया।

केंद्र सरकार पर सवाल : पूर्व मंत्री और विश्लेषक प्रदीप माथुर का मानना है कि यह पूरी तरह से प्रशासनिक और राजनीतिक विफलता है।

'यह कोई बड़ी समस्या नहीं थी। स्थानीय प्रतिनिधियों से बात करके आसानी से सुलझाया जा सकता था। लेकिन सरकार ने संवाद की जगह दबाव और अनदेखी का रास्ता चुना। तीन लाख की आबादी वाले क्षेत्र की मांगों को अगर आप नहीं सुलझा सकते तो पूरे देश का संचालन कैसे करेंगे?'

माथुर के अनुसार, सरकार स्थानीय लोगों को सत्ता में हिस्सेदारी नहीं देना चाहती। उनके अनुसार इसके पीछे औद्योगिक घरानों के हित भी हो सकते हैं क्योंकि लद्दाख सौर ऊर्जा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के लिए बेहद महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक संदर्भ और असुरक्षा : लद्दाख में 1970 के दशक से ही केंद्र शासित प्रदेश की मांग उठती रही है। लेकिन 2019 में

जब इसे अलग दर्जा मिला, तो उम्मीदों के विपरीत हालात बिगड़ते गए।

द्वारका वांचुक बताते हैं : 'पहले लद्दाख से चार विधायक और दो मंत्री तक होते थे। आज हमारे पास केवल एक सांसद है और सारी शक्ति उपराज्यपाल और नौकरशाही के हाथ में है। हिल काउंसिल महज एक कार्यकारी निकाय रह गया है। यही असंतोष का मूल कारण है।'

उन्होंने यह भी बताया कि भाजपा ने दो बार अपने घोषणापत्र में लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने का वादा किया था, लेकिन उसे निभाया नहीं।

बेरोज़गारी और संसाधनों का मुद्दा : लद्दाख में बेरोज़गारी दर 26% है, जो राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है। यह युवा असंतोष की बड़ी वजह है।

डॉ. सलीम खान के शब्दों में : 'लद्दाखी युवाओं ने पहले चीन से लड़कर सीमा की रक्षा की, अब उन्हें अपने ही अधिकारों के लिए लड़ना पड़ रहा है। बेरोज़गारी बढ़ रही है, संसाधन बाहरी उद्योगपतियों के हाथों में जा रहे हैं, और दिल्ली से कोई सुनवाई नहीं हो रही।'

राजनीतिक संदेश : लद्दाख की घटनाओं ने भाजपा के लिए बड़ा राजनीतिक झटका दिया है। दो कार्यकाल तक भाजपा का सांसद यहां से चुना गया था। लेकिन अब भाजपा के कार्यालय को जलाया जाना और झंडा उतार फेंकना गहरी नाराज़गी का संकेत है।

डॉ. खान कहते हैं : 'अगर केंद्र सरकार अपने ही पार्टी कार्यालय को जलने से नहीं बचा सकी, तो यह उसके नियंत्रण खोने का प्रतीक है। प्रधानमंत्री नेपाल में मारे गए युवाओं पर संवेदना जता सकते हैं, लेकिन लद्दाख के युवाओं की मौत पर चुप हैं। यही जनता का गुस्सा है।'

आगे का रास्ता : विशेषज्ञों का मानना है कि स्थिति को और बिगड़ने से रोकने का एकमात्र रास्ता संवाद है। सरकार को स्थानीय नेतृत्व को विश्वास में लेना होगा, उनकी चारों प्रमुख मांगों पर गंभीरता से विचार करना होगा और युवाओं की बेरोज़गारी दूर करने के लिए ठोस कदम उठाने होंगे।

लद्दाख न केवल सामरिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी बेहद संवेदनशील क्षेत्र है। यहां शांति बनाए रखना केवल स्थानीय नहीं बल्कि राष्ट्रीय हित में भी है।

निष्कर्ष : लद्दाख का आंदोलन यह दिखाता है कि लोकतंत्र में केवल ढांचागत बदलाव या संवैधानिक फेरबदल से जनता को संतोष नहीं मिलता। असली जरूरत है स्थानीय लोगों को वास्तविक शक्ति और हिस्सेदारी देने की। 2019 के फैसले के बाद शुरू हुई उम्मीदें अब आक्रोश में बदल चुकी हैं।

अगर सरकार ने अब भी संवाद का रास्ता नहीं अपनाया, तो यह असंतोष और गहरा सकता है और देश की सबसे संवेदनशील सीमावर्ती क्षेत्र में स्थिरता पर गंभीर असर डाल सकता है।

लद्दाख की आवाज़ स्पष्ट है : वे अपनी पहचान, अधिकार और भविष्य की सुरक्षा चाहते हैं। सवाल यह है कि क्या केंद्र सरकार इस पुकार को सुनेगी, या इसे भी दबाने की कोशिश करेगी?

लद्दाख त्रासदी : पुल जलाने की बीजेपी शैली

डॉ. सतीश मिश्रा

मणिपुर, असम और उत्तराखंड के बाद अब केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख मोदी-शाह की असहमति से निपटने की शैली का ताजा शिकार बना है। इसका सीधा अर्थ है कि जनता की आवाज़ को बलपूर्वक दबाया जाए और आज की सत्ता संरचना में असहमति या किसी वैकल्पिक दृष्टिकोण के लिए कोई स्थान नहीं है।

24 सितम्बर को सीआरपीएफ और पुलिस ने प्रदर्शनकारियों की भीड़ पर गोली चलाई। मानक संचालन प्रक्रिया (SOP) के अनुसार पैरों पर गोली चलाने के बजाय सीधे शरीर पर फायर किया गया। यह प्रदर्शन शिक्षाविद और मैग्सेसे पुरस्कार विजेता सोनम वांगचुक के नेतृत्व में चल रही भूख हड़ताल के समर्थन में हुआ था, जिसमें लद्दाख को विशेष संवैधानिक सुरक्षा दिए जाने की मांग की जा रही थी। हड़ताल 15वें दिन में पहुंच गई थी और प्रतिभागियों की बिगड़ती हालत ने लोगों को भावनात्मक रूप से आंदोलित कर दिया।

प्रत्यक्षदर्शियों ने कहा, 'हजारों लोग इकट्ठा हुए थे और यह पूरी तरह शांतिपूर्ण प्रदर्शन था।' चूंकि केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या गृह मंत्रालय की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, कुछ लोग अधीर होकर सड़कों पर उतर आए और हिंसक हो गए। भीड़ ने बीजेपी कार्यालय और कई वाहनों को आग के हवाले कर दिया।

पुलिस ने आंसू गैस के गोले दागे और लाठीचार्ज किया क्योंकि कुछ युवाओं ने कथित तौर पर हिंसा की और पत्थरबाजी की। यह सब लेह में बड़े प्रदर्शन और बंद के दौरान हुआ।

लेह एपेक्स बॉडी (LAB) की युवा इकाई ने बंद और प्रदर्शन का आह्वान किया था। 10 सितम्बर से चल रही 35-दिवसीय भूख हड़ताल में शामिल 15 में से दो लोगों की हालत 23 सितम्बर की शाम को बिगड़ गई और उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा। LAB, जो एक स्वतंत्र संगठन है, ने पहले ही चेतावनी दी थी कि जनता का धैर्य जवाब दे रहा है, लेकिन दिल्ली की सत्ता ने इसे अनसुना कर दिया।

इसके बाद वांगचुक ने 15 दिन की अपनी भूख हड़ताल समाप्त कर दी और हिंसा की कड़ी निंदा करते हुए इसे 'बेमानी' बताया।

यह आंदोलन छठी अनुसूची का विस्तार और लद्दाख को पूर्ण राज्य का दर्जा देने की मांगों के समर्थन में था।

लद्दाख के लोग राज्य का दर्जा, संविधान की छठी अनुसूची में समावेशन, लद्दाख लोक सेवा आयोग की स्थापना और दो संसदीय सीटों के साथ चार विधानसभा सीटों की मांग कर रहे हैं। बातचीत को जानबूझकर टालते रहने से LAB और कारगिल डेमोक्रेटिक अलायंस (KDA) के सदस्यों में निराशा गहरी होती

गई। इस आक्रोश की आग में घी का काम किया है 26.3% की बेरोज़गारी दर ने, जो अंडमान-निकोबार के बाद देश में दूसरी सबसे ऊंची है।

केंद्र और लद्दाख प्रतिनिधियों (LAB और KDA) के बीच अगली बैठक 6 अक्टूबर को तय की गई थी।

वांगचुक लंबे समय से लद्दाख को पूर्ण राज्य का दर्जा और छठी अनुसूची में समावेशन की मांग को लेकर अनशन कर रहे हैं। युवाओं में यह अपील गहराई से गूंजी है, जो केंद्र पर ठोस कदम न उठाने का आरोप लगाते हैं। दिल्ली तक मार्च निकालकर दबाव बनाने की कोशिश की गई थी, लेकिन उन्हें राजधानी में अनशन करने की अनुमति नहीं मिली। वह लौटे और फिर से अनशन शुरू किया।

लेह में हुई हिंसा पर प्रतिक्रिया देते हुए वांगचुक ने एक्स पर लिखा- 'बहुत दुखद घटनाएं। मेरा शांतिपूर्ण मार्ग का संदेश आज असफल रहा। युवाओं से मेरी अपील है कि इस मूर्खता को रोकें, यह केवल हमारे मकसद को नुकसान पहुंचाता है।'

प्रदर्शनकारियों की मांगें सिर्फ राज्य के दर्जे तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनका केंद्र लद्दाख की विशिष्ट जनजातीय पहचान और ठंडे रेगिस्तान जैसी जलवायु वाली इस भूमि की संस्कृति की रक्षा पर है।

LAB और KDA पिछले चार वर्षों से गृह मंत्रालय के साथ बातचीत कर रहे हैं। मई में हुई पिछली बैठक के बाद अब 6 अक्टूबर की तारीख तय की गई। परंतु बिना परामर्श यह तारीख तय करना LAB को 'थोपना' लगा। इसी कारण बंद और प्रदर्शन हिंसक हो गया और बीजेपी कार्यालय भी आग की चपेट में आ गया।

LAB के सह-अध्यक्ष चेरिंग दोरजे ने कहा था कि जब तक कोई समझौता नहीं होता भूख हड़ताल जारी रहेगी। 'हमारा विरोध शांतिपूर्ण है, लेकिन लोग अधीर हो रहे हैं। हालात हाथ से निकल सकते हैं', उन्होंने चेतावनी दी थी।

22 सितम्बर को वांगचुक ने कहा था कि केंद्र सरकार ने दो बार लद्दाख को छठी अनुसूची में शामिल करने का वादा किया था और इसे आगामी हिल काउंसिल चुनाव से पहले पूरा करना चाहिए।

बौद्ध और मुस्लिम-दोनों ही प्रमुख समुदाय इस आंदोलन में साथ हैं।

2019 में जम्मू-कश्मीर राज्य के विभाजन के बाद से लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश बनाया गया। परंतु जम्मू-कश्मीर को विधानसभा और सरकार मिली जबकि लद्दाख सीधा केंद्र के अधीन रह गया। अनुच्छेद 370 हटने के बाद गैर-स्थानीयों को भूमि खरीद की अनुमति मिल गई जिससे अदाणी समूह समेत बड़े कारोबारी ज़मीन खरीदने की कोशिश कर रहे हैं। इससे स्थानीय लोगों में Alienation की भावना बढ़ी है।

गृह मंत्रालय ने केवल लोक सेवा आयोग और दो लोकसभा सीटों की मांग पर विचार का आश्वासन दिया। राज्य का दर्जा देने पर केंद्र का तर्क है कि लद्दाख को पहले ही ञ का दर्जा मिल चुका है।

छठी अनुसूची (अनुच्छेद 244 के तहत) आदिवासी क्षेत्रों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करती है।

लेकिन शांतिपूर्ण आंदोलन संभालने में असक्षम मोदी सरकार ने आंदोलन और इसके नेताओं, खासकर वांगचुक को बदनाम करने का रास्ता चुना। CBI को उनके संस्थान की FCRA जांच सौंप दी गई।

26 सितम्बर को, हिंसक घटनाओं के दो दिन बाद, वांगचुक को लेह में गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर विदेशी फंडिंग और भड़काऊ भाषण देने का आरोप लगाया गया। साथ ही उनके NGO SECMOL की FCRA लाइसेंस भी रद्द कर दी गई।

लद्दाख पुलिस ने तो यहां तक दावा किया कि वांगचुक पाकिस्तान PIO से संपर्क में थे।

यह सब साफ करता है कि 2014 से अब तक मोदी सरकार असहमति और आंदोलनों से निपटने के लिए दमन, बदनाम करने और बल प्रयोग की नीति ही अपनाती रही है।

देश भर में असंतोष उबल रहा है और लद्दाख शायद उस बिंदु पर पहुंच रहा है जहां से लोगों का गुस्सा बड़े विस्फोट का रूप ले सकता है।

(डॉ. सतीश मिश्रा वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक हैं)

भटका आंदोलन : लद्दाख की आवाज...!

पूना आई कौशिश

आज राजनीतिक भारत लद्दाख को लेकर शोर-शराबे और बहस में डूबा है। जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन और अनुच्छेद 370 हटने के छह साल बाद, जब जम्मू-कश्मीर और लद्दाख को दो केंद्र शासित प्रदेशों में बांटा गया, तब की खुशियां अब फीकी पड़ चुकी हैं। लद्दाख के लोग खुद को ठगा हुआ महसूस कर रहे हैं और पूछ रहे हैं कि मोदी सरकार ने 2019 के वादों को क्यों भुला दिया।

सबसे बड़ा मुद्दा है लद्दाख को राज्य का दर्जा, दूसरा है छठी अनुसूची का विस्तार जिससे आदिवासी भूमि, संस्कृति और स्वशासन सुरक्षित रहते हैं। यहां 97% आबादी अनुसूचित जनजाति की है, जिन्हें डर है कि बाहरी लोग और निवेशक उनकी पहचान और संसाधनों पर हावी हो जाएंगे। तीसरी मांग है लेह और कारगिल के लिए अलग लोकसभा सीटें और चौथी, स्थानीय युवाओं के लिए रोजगार आरक्षण।

इन्हीं अधूरे वादों ने हाल में हिंसक आंदोलन, भूख हड़ताल और आगजनी को जन्म दिया जिसमें चार लोगों की मौत और पचास से अधिक घायल हुए। हालात काबू करने के लिए केंद्र ने कर्फ्यू लगाया और आंदोलन के नेता सोनम वांगचुक पर पाकिस्तान से संबंध रखने और भड़काऊ भाषण देने का आरोप लगाते हुए उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में गिरफ्तार कर लिया।

लेकिन बहुत से लोग इस सरकारी दावे को नहीं मानते। 2018 के मैग्सेसे पुरस्कार विजेता वांगचुक, जिन्हें फिल्म

3 इडियट्स के किरदार से जोड़ा जाता है, कभी केंद्र शासित प्रदेश का स्वागत करने वाले और मोदी की तारीफ करने वाले रहे हैं। उनकी पत्नी का कहना है- 'जो व्यक्ति भारतीय सेना के लिए घर बनाता है और चीनी सामान के बहिष्कार की अपील करता है, वह देशविरोधी कैसे हो सकता है?'

दरअसल 2024 से वांगचुक लद्दाख की निराशा की आवाज बने। वे लगातार याद दिलाते रहे कि 2019 के वादे अभी अधूरे हैं। उनका कहना है कि यह सरकार के हित में है, न कि देश विरोधी सोच।

सवाल यह भी है कि 1995 में बनी लद्दाख स्वायत्त हिल विकास परिषदें (लेह और कारगिल) जिन्हें आत्मशासन का आधार बनना था, अब तक प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार नहीं पा सकी हैं। भूमि स्वामित्व और बड़े ऊर्जा प्रोजेक्टों पर भी स्थिति अस्पष्ट है। स्थानीय नेताओं का कहना है- 'हमारी मांग केवल संस्कृति और पर्यावरण की रक्षा के लिए है, जो देश की धरोहर का हिस्सा है।' यही कारण है कि लेह एपेक्स बॉडी, कारगिल डेमोक्रेटिक अलायंस और बौद्ध संगठन भी इस आंदोलन के साथ हैं।

दिलचस्प है कि लेह एपेक्स बॉडी ने 6 अक्टूबर से केंद्र के साथ वार्ता तोड़ दी और वांगचुक पर लगे आरोप हटाने, सरकारी नौकरियां देने तथा पर्यावरण संरक्षण की मांग दोहराई।

लेकिन दिल्ली लगता है मूल समस्या को टाल रही है। यदि सरकार सोचती है कि कर्फ्यू, संचार अवरोध और आरोप-प्रत्यारोप से लद्दाख शांत हो जाएगा तो यह भूल है। यहां के लोग मान्यता और भरोसा चाहते हैं, खोखले भाषण नहीं।

सच यह है कि राज्य का दर्जा और छठी अनुसूची दोनों ही मुश्किल हैं। तीन लाख की आबादी वाले लद्दाख को राज्य बनाना तब असंभव है जब जम्मू-कश्मीर को अब तक राज्य का दर्जा नहीं मिला। और छठी अनुसूची का दरवाजा खोलने पर मणिपुर जैसे राज्य भी कतार में आ जाएंगे। हां, पांचवीं अनुसूची का विकल्प जरूर खोजा जा सकता है, जो जिला और ग्राम परिषदों को संसाधनों के बंटवारे पर अधिकार देती है।

जून 2025 में केंद्र ने कुछ नियम जारी किए थे- 85% आरक्षण, 15 साल का निवास प्रमाण पत्र, हिल काउंसिलों में महिलाओं के लिए 33% सीटें और पांच आधिकारिक भाषाओं की मान्यता। लेकिन इससे भी स्थानीय असुरक्षा खत्म नहीं हुई।

अब समय है कि केंद्र संवाद बढ़ाए, 2019 से खाली पड़े 1,275 सरकारी पद भरे और पर्यावरणीय संकट को गंभीरता से ले। लद्दाख भारत की रणनीतिक सीमा है जो चीन और पाकिस्तान से लगती है। यहां के लोगों ने हमेशा देश की रक्षा में पहली पंक्ति में खड़े होकर योगदान दिया है।

इसलिए सरकार को चाहिए कि वादों को निभाए, लोगों को भरोसा दिलाए और लद्दाख को भारत की मुख्यधारा से और गहराई से जोड़े। यही लंबी अस्थिरता और असंतोष से बचने का रास्ता है।

लद्दाख केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा और सांस्कृतिक विविधता का अहम हिस्सा है। केंद्र को यह सुनिश्चित करना होगा कि लद्दाखी खुद को भारत से जुड़ा महसूस करें, अलग-थलग नहीं।

वांगचुक लद्दाख की निराशा की आवाज बने। वे लगातार याद दिलाते रहे कि 2019 के वादे अभी अधूरे हैं। उनका कहना है कि यह सरकार के हित में है, न कि देश विरोधी सोच। सवाल यह भी है कि 1995 में बनी लद्दाख स्वायत्त हिल विकास परिषदें (लेह और कारगिल) जिन्हें आत्मशासन का आधार बनना था, अब तक प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार नहीं पा सकी हैं। भूमि स्वामित्व और बड़े ऊर्जा प्रोजेक्टों पर भी स्थिति अस्पष्ट है। स्थानीय नेताओं का कहना है- 'हमारी मांग केवल संस्कृति और पर्यावरण की रक्षा के लिए है, जो देश की धरोहर का हिस्सा है।' यही कारण है कि लेह एपेक्स बॉडी, कारगिल डेमोक्रेटिक अलायंस और बौद्ध संगठन भी इस आंदोलन के साथ हैं। दिलचस्प है कि लेह एपेक्स बॉडी ने 6 अक्टूबर से केंद्र के साथ वार्ता तोड़ दी और वांगचुक पर लगे आरोप हटाने, सरकारी नौकरियां देने तथा पर्यावरण संरक्षण की मांग दोहराई। लेकिन दिल्ली लगता है मूल समस्या को टाल रही है। यदि सरकार सोचती है कि कर्फ्यू, संचार अवरोध और आरोप-प्रत्यारोप से लद्दाख शांत हो जाएगा तो यह भूल है। यहां के लोग मान्यता और भरोसा चाहते हैं, खोखले भाषण नहीं। सच यह है कि राज्य का दर्जा और छठी अनुसूची दोनों ही मुश्किल हैं। तीन लाख की आबादी वाले लद्दाख को राज्य बनाना तब असंभव है जब जम्मू-कश्मीर को अब तक राज्य का दर्जा नहीं मिला। और छठी अनुसूची का दरवाजा खोलने पर मणिपुर जैसे राज्य भी कतार में आ जाएंगे। हां, पांचवीं अनुसूची का विकल्प जरूर खोजा जा सकता है, जो जिला और ग्राम परिषदों को संसाधनों के बंटवारे पर अधिकार देती है।

जीएसटी-2 : राजस्व पहले या उपभोक्ताओं को राहत

प्रो. शिवाजी सरकार

'एक राष्ट्र, एक कर' का सपना एक और उथल-पुथल के लिए तैयार है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा स्वतंत्रता दिवस पर घोषित जीएसटी-2 के नए, 40 प्रतिशत कर स्लैब ने सस्ते सामान और सरल अनुपालन की उम्मीदें जगाई हैं। फिर भी, अपने पूर्ववर्ती की तरह, जीएसटी-2 के भी तर्क संगतीकरण से ज्यादा राजस्व संरक्षण की कवायद बनने का खतरा है।

संशोधित जीएसटी ढांचे में चार स्लैब प्रस्तावित हैं- 0 प्रतिशत, 5 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 40 प्रतिशत-जो सरलीकरण के नाम पर मौजूदा 12 प्रतिशत और 28 प्रतिशत की श्रेणियों को खत्म कर देंगे। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का कहना है कि नई व्यवस्था से कीमतें कम होंगी और मुद्रास्फीति पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी। लेकिन हकीकत इससे कहीं ज्यादा जटिल साबित हो सकती है।

नए स्लैब में लाभ और हानि : 28 प्रतिशत की दर को 18 प्रतिशत में मिलाने से एयरकंडीशनर, वाशिंग मशीन, डिशवॉशर और छोटी कारें सस्ती हो सकती हैं। ट्रैक्टर और कुछ निर्माण अनुबंध भी पांच प्रतिशत की दर में आ सकते हैं, जिससे किसानों और बुनियादी ढांचा क्षेत्र को राहत मिलेगी।

लेकिन जिन वस्तुओं पर अभी 12 प्रतिशत कर लगता है, उन पर अनिश्चितता मंडरा रही है। क्या स्टेशनरी, जूते-चप्पल, परिधान और पैकेजिंग सामग्री पर कर घटाकर 5 प्रतिशत किया जाएगा या 18 प्रतिशत? पहले वाले से राहत मिलेगी, लेकिन दूसरे वाले से परिवारों, छात्रों और छोटे व्यवसायों पर असर पड़ेगा। बीमा जैसी सेवाएं, जिन पर पहले से ही 18 प्रतिशत कर लगता है, उन्हें राहत मिलना मुश्किल हो सकता है, भले ही सरकार स्वास्थ्य और जीवन बीमा पॉलिसियों पर कर शून्य करना चाहती हो।

अधिकारी मानते हैं कि यह बदलाव राजस्व-तटस्थ रखने के लिए किया गया है। सरकारी अनुमानों के अनुसार, अगर 12 प्रतिशत वस्तुओं को 5 प्रतिशत कर दिया जाता है, तो सालाना 80,000 करोड़ रुपये तक का नुकसान हो सकता है। इस कमी को पूरा करने के लिए, जीएसटी-2 में 'पाप-मुक्त वस्तुओं' और विलासिता की वस्तुओं- तंबाकू, शीतल पेय, पान मसाला, लग्जरी कारें और ऑनलाइन गेमिंग पर 40 प्रतिशत का दंडात्मक स्लैब पेश किया गया है।

बीमा क्षेत्र, जो जीएसटी से 9,700 करोड़ कमाता है, एक संवेदनशील मामला बना हुआ है। कई लोग तर्क देते हैं कि स्वास्थ्य और जीवन बीमा पॉलिसियों पर कर शून्य या 5 प्रतिशत कर लगाया जाना चाहिए, लेकिन इससे राजस्व का भारी नुकसान होगा। एक समझौता केवल वास्तविक प्रीमियम पर कर लगाना हो सकता है, क्योंकि संग्रह का 30-80 प्रतिशत एजेंटों के कमीशन में चला जाता है।

राज्यों का विरोध : राज्य राजस्व हानि को लेकर चिंतित हैं। पश्चिम बंगाल की स्वास्थ्य मंत्री चंद्रिमा भट्टाचार्य ने जीएसटी परिषद की बैठक के बाद कहा- 'अगर राज्यों को राजस्व का नुकसान हो रहा है, तो हम जानना चाहते हैं कि हमें इसकी भरपाई कैसे की जाएगी। उन्होंने अभी तक इसका आकलन नहीं किया है।' उत्तर प्रदेश के वित्त मंत्री सुरेश खन्ना ने भी इस चिंता को दोहराया- 'केंद्र द्वारा दी गई प्रस्तुति में यह उल्लेख नहीं किया गया कि कितना नुकसान हो रहा है।' चूंकि राज्य पहले से ही केंद्र से मिलने वाले मुआवजे में कमी को लेकर चिंतित हैं, इसलिए किसी भी कमी के कारण वे अधिक वस्तुओं को उच्च श्रेणी में रखने के लिए दबाव डाल सकते हैं।

रोजमर्रा की चीज़ें महंगी हो सकती हैं : उपभोक्ता बड़े उपकरणों या ट्रैक्टरों की गिरती कीमतों से खुश हो सकते हैं, लेकिन कई

घरेलू जरूरतों के और महंगे होने का खतरा है। मक्खन, घी, पैकेज्ड खाद्य पदार्थ, प्रसंस्कृत फल, जैम, जेली, छाते और पैकेजिंग बॉक्स, सभी की कीमतें बढ़ सकती हैं। यहां तक कि छात्रों की स्टेशनरी पर भी कर बढ़ सकता है, क्योंकि इसका व्यापक रूप से व्यावसायिक उपयोग होता है।

जीएसटी परिषद ने इस झटके को कम करने के लिए 'सौंदर्यपूर्ण समायोजन' के संकेत दिए हैं। लेकिन सूत्र मानते हैं कि 40 प्रतिशत का स्लैब राजस्व घाटे की भरपाई का एक स्थायी जरिया बन सकता है। पहले से ही, पाप वस्तुओं पर 28 प्रतिशत के स्लैब के ऊपर 15 प्रतिशत तक का अतिरिक्त उपकर लगता है- जो प्रभावी रूप से लगभग 43 प्रतिशत है। इस बीच, शराब जो पूरी तरह से जीएसटी से बाहर है- पर लगातार इनपुट टैक्स लागू होते रहेंगे। बीयर और स्पिरिट महंगी हो गई हैं, और जीएसटी-2 में इस विसंगति को दूर करने की संभावना कम ही है।

एक पूर्व-निवारक कदम : दिलचस्प बात यह है कि 22 जून, 2024 को हुई परिषद की बैठक में, संभवत: पुनर्गठन की प्रत्याशा में, कर योग्य सूची का विस्तार पहले ही कर दिया गया था। पेन, मुद्रित सामग्री, ध्वनि रिकॉर्डिंग, प्रसारण अधिकार और पैकेजिंग कंटेनर जैसी वस्तुओं को 12 प्रतिशत की श्रेणी में डाल दिया गया। इनकी लागत बढ़ गई है, क्योंकि पैकेजिंग लगभग हर उत्पाद का अभिन्न अंग है। 12 प्रतिशत की श्रेणी समाप्त होने के साथ, कई वस्तुएं अब 18 प्रतिशत की श्रेणी में जा सकती हैं। स्क्रैप और पॉलीयूरेथेन, जो कभी कर-मुक्त थे, पर 5 प्रतिशत जीएसटी लगा दिया गया, जिससे थोक उपयोगकर्ताओं को बहुत कम लाभ हुआ।

पेट्रोल पहेली : देश के सबसे बड़े राजस्व स्रोत पेट्रोल और डीजल को जीएसटी से बाहर रखा गया है। केंद्र और राज्य दोनों ही इन्हें जीएसटी में शामिल करने का विरोध कर रहे हैं क्योंकि उत्पाद शुल्क और वैट संग्रह बहुत ज़्यादा आकर्षक हैं।

वित्त मंत्री सीतारमण ने हाल ही में दोहराया कि केंद्र पेट्रोलियम को जीएसटी के दायरे में लाने का इरादा रखता है, लेकिन यह राज्यों की सहमति से ही हो सकता है। मान लीजिए, 40 प्रतिशत जीएसटी पर भी, दिल्ली में पेट्रोल की कीमतें रु. 96 से घटकर लगभग रु. 78 प्रति लीटर हो सकती हैं- लेकिन राजनीतिक रूप से इतनी महंगी राहत मिलना नामुमकिन सा लगता है।

अनुपालन संबंधी समस्याएं : दरों के अलावा, जीएसटी को अब भी बोझिल माना जाता है। कई व्यवसाय मालिकों का तर्क है कि यह व्यवस्था हर करदाता उद्यमी को संदेह की दृष्टि से देखती है, जबकि प्रक्रियाएं अभी भी बोझिल हैं। जब तक जीएसटी-2 इन परेशानियों का समाधान नहीं करता, सरलीकरण सिर्फ नारा बनकर रह जाएगा, न कि केवल वास्तविकता।

पहले राजस्व, बाद में राहत : जीएसटी संग्रह में तेजी देखी गई है- 2024-25 में रु.22.08 लाख करोड़, जो 2020-21 के आंकड़े से लगभग दोगुना है, और इसमें रिकॉर्ड 9.4 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। अकेले जुलाई 2025 में रु. 1.95 लाख करोड़ का संग्रह हुआ, जो साल-दर-साल 7.6 प्रतिशत की वृद्धि है। इस तेजी के साथ, करदाताओं को उम्मीद थी कि कर-युक्तिकरण का मतलब बोझ कम होगा। इसके बजाय, जीएसटी अधिशेष ने राजकोषीय घाटे को कम करने में काफी हद तक मदद की है।

नया 40 प्रतिशत स्लैब, जिसे शुरुआत में पाप वस्तुओं के लिए एक संकीर्ण उपाय के रूप में तैयार किया गया था, समय के साथ और व्यापक हो सकता है, जिससे राजस्व बढ़ाने के लिए और अधिक उत्पाद शामिल हो सकते हैं। इस बीच, व्यवसाय वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए कम दरें चाहते हैं, खासकर वाशिंगटन में सख्त ट्रम्प प्रशासन के तहत निर्यात दबावों के बीच।

आगे का रास्ता : जीएसटी-2 को सरलीकरण और राहत के एक नए अध्याय के रूप में पेश किया जा रहा है। फिर भी, अगर यह बोझों के पुनर्व्यवस्थापन से ज्यादा कुछ नहीं साबित होता, जिसमें कुछ वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं जबकि मध्यम वर्ग को ज़्यादा भुगतान करना पड़ता है, तो यह अपने मूल दृष्टिकोण से भटकने का जोखिम उठाता है। जीएसटी परिषद की असली परीक्षा यह होगी कि वह तर्कसंगतता के जरिए विकास का रास्ता चुनती है या ऊंची दरों के जरिए राजकोषीय सतर्कता बरतती है। उपभोक्ता, व्यवसाय और राज्य, सभी इस जवाब का इंतजार कर रहे हैं।

विरोधाभासों के बीच भारत की अर्थव्यवस्था

■ प्रो. शिवाजी सरकार

भारत लगभग आधी सदी से लगातार व्यापार घाटे के साथ जी रहा है। देश ने अंतिम बार 1976-77 में वार्षिक व्यापार अधिशेष दर्ज किया था- इतिहास में केवल दूसरी बार, पहली बार 1972-73 में। उसके बाद से हर साल घाटे की स्याही गहरी होती गई है।

भारत लगातार जितना निर्यात करता है उससे कहीं अधिक आयात करता है। चीन इसमें सबसे बड़ा घाटा भागीदार है, उसके बाद रूस, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और इंडोनेशिया आते हैं। निर्यात-उन्मुख विनिर्माण आधार खड़ा न कर पाने और सस्ते-तकनीक वाले आयात को खुलकर आने देने से भारत एक ऐसे चक्र में फंस गया है जिसमें घाटे बढ़ते हैं और प्रतिस्पर्धात्मकता घटती जाती है।

लगातार सरकारें इस घाटे का कारण पेट्रोलियम आयात बताती रही हैं। सच है कि भारत 85-90 प्रतिशत कच्चे तेल पर निर्भर है और 2024-25 में इसका आयात बिल लगभग 180 अरब डॉलर रहा। लेकिन यह तर्क अधूरा है। जब तेल निर्यात का हिसाब घटा दिया जाए तो पेट्रोलियम का हिस्सा कुल आयात में केवल 10-14 प्रतिशत रह जाता है। असली समस्या गैर-पेट्रोलियम आयातों की है- इलेक्ट्रॉनिक्स, रसायन, प्लास्टिक, उर्वरक और यहां तक कि रुई के फाहे और रसोई का सामान तक। ये ऐसे उत्पाद हैं जिन्हें भारत आसानी से देश में बना सकता है, लेकिन इन्हें भारी मात्रा में आयात कर महंगे दामों पर बेचा जाता है। 2024-25 में भारत का आयात 678.21 अरब डॉलर से बढ़कर 720.24 अरब डॉलर

पहुँच गया जबकि निर्यात घटकर 437.42 अरब डॉलर रह गया। इसका नतीजा रहा 282.83 अरब डॉलर का भारी व्यापार घाटा। यह स्थिति बताती है कि घरेलू क्षमता और नीतिगत ढांचे दोनों कमजोर हैं।

भारत की विनिर्माण संरचना अब भी बिखरी हुई और आयातित घटकों पर निर्भर है। इलेक्ट्रॉनिक्स इसका उदाहरण है- 2024 में भारत ने 80 अरब डॉलर से अधिक इलेक्ट्रॉनिक सामान आयात किया, जबकि घरेलू उत्पादन अधिकतर असेंबली तक सीमित रहा। यही स्थिति रसायन, फार्मा (विशेषकर सक्रिय अवयवों) और मशीनरी में भी है।

भारत ने जापान, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका, आसियान, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, यूएई और ईएफटीए देशों के साथ 13 मुक्त व्यापार समझौते किए हैं, लेकिन इनमें से अधिकतर से लाभ नहीं हुआ, बल्कि आयात और बढ़े। तुलना में चीन ने अधोसंरचना, रोजगार और निर्यात पर केंद्रित नीतियों से अपने को विश्व का विनिर्माण महाशक्ति बना लिया। 2024 में चीन का व्यापार अधिशेष 992.2 अरब डॉलर रहा।

भारत की वैश्विक निर्यात हिस्सेदारी मात्र 1.8 प्रतिशत है जबकि चीन 14 प्रतिशत से अधिक हिस्सेदारी रखता है। यहां तक कि वियतनाम और मलेशिया जैसे छोटे देश भी निर्यात में भारत को पछाड़ रहे हैं। अमेरिका भारत का सबसे बड़ा निर्यात गंतव्य है, लेकिन हाल में उसने कई भारतीय वस्तुओं पर 50 प्रतिशत शुल्क लगा दिया है। इसके जवाब में भारत ने 25,000 करोड़ रुपये का 'निर्यात प्रोत्साहन मिशन' घोषित किया है, किंतु यह पैमाना प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में बेहद छोटा है। भारत को गैर-ज़रूरी आयात पर नियंत्रण, उच्च-तकनीकी विनिर्माण क्षमता (इलेक्ट्रॉनिक्स, सेमीकंडक्टर, फार्मा, हरित तकनीक) को बढ़ाना, अमेरिका-यूरोप पर निर्भरता घटाना और घरेलू उत्पादन लागत को कम करने के ठोस उपाय करने होंगे।

रोजगार के मोर्चे पर भी चुनौतियां हैं। मोदी सरकार की एक लाख करोड़ रुपये की ईपीएफ प्रोत्साहन योजना स्वागत योग्य है, लेकिन इससे गुणवत्तापूर्ण रोजगार सृजन की समस्या हल नहीं होगी। आईआईटी स्नातकों का 30-36 प्रतिशत हर साल विदेश चला जाता है, और जो रहते हैं वे अधिकतर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए काम करते हैं। भारत में श्रम मानकों और कामकाजी परिस्थितियों को मानवीय बनाए बिना इस पलायन को रोकना कठिन होगा।

भारत के लिए यह समय चेतावनी का है। लगातार व्यापार घाटे का अर्थ है खोए हुए उद्योग, खोए हुए रोज़गार और खोए हुए अवसर। अगर भारत अपनी रणनीति नहीं बदलेगा तो वह हमेशा का 'नेट आयातक' बना रहेगा, जिससे न केवल उसकी अर्थव्यवस्था बल्कि आर्थिक संप्रभुता भी प्रभावित होगी। आत्मनिर्भरता केवल नारे से नहीं, बल्कि मजबूत औद्योगिक शक्ति और निर्यात उन्मुख अर्थव्यवस्था बनाने से आएगी।

(लेखक : वरिष्ठ पत्रकार तथा मीडिया मैप के सहायक संपादक हैं)

निर्यात-उन्मुख विनिर्माण आधार खड़ा न कर पाने और सस्ते-तकनीक वाले आयात को खुलकर आने देने से भारत एक ऐसे चक्र में फंस गया है जिसमें घाटे बढ़ते हैं और प्रतिस्पर्धात्मकता घटती जाती है। लगातार सरकारें इस घाटे का कारण पेट्रोलियम आयात बताती रही हैं। सच है कि भारत 85-90 प्रतिशत कच्चे तेल पर निर्भर है और 2024-25 में इसका आयात बिल लगभग 180 अरब डॉलर रहा। लेकिन यह तर्क अधूरा है। जब तेल निर्यात का हिसाब घटा दिया जाए तो पेट्रोलियम का हिस्सा कुल आयात में केवल 10-14 प्रतिशत रह जाता है। असली समस्या गैर-पेट्रोलियम आयातों की है- इलेक्ट्रॉनिक्स, रसायन, प्लास्टिक, उर्वरक और यहां तक कि रुई के फाहे और रसोई का सामान तक। ये ऐसे उत्पाद हैं जिन्हें भारत आसानी से देश में बना सकता है, लेकिन इन्हें भारी मात्रा में आयात कर महंगे दामों पर बेचा जाता है। 2024-25 में भारत का आयात 678.21 अरब डॉलर से बढ़कर 720.24 अरब डॉलर पहुँच गया जबकि निर्यात घटकर 437.42 अरब डॉलर रह गया। इसका नतीजा रहा 282.83 अरब डॉलर का भारी व्यापार घाटा। यह स्थिति बताती है कि घरेलू क्षमता और नीतिगत ढांचे दोनों कमजोर हैं। भारत की विनिर्माण संरचना अब भी बिखरी हुई और आयातित घटकों पर निर्भर है।

एक अक्टूबर : अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस

परिवर्तन से घबराएं नहीं...!!

अमिताभ श्रीवास्तव

वर्ष 2000 से लगातार इस वर्ष भी संयुक्त राष्ट्र एक अक्टूबर को अंतर्राष्ट्रीय दिवस बुजुर्ग दिवस व्यक्ति दिवस मना रहा है। इस वर्ष यह दिन 'स्थानीय और वैश्विक कार्रवाई करने वाले बुजुर्ग व्यक्ति-हमारी आकांक्षाओं, हमारी भलाई और हमारे अधिकारों' के स्लोगन को लेकर मनाया जा रहा है।

नई स्वास्थ्य सुविधाओं और जीने के नये तरीकों को आत्मसात करने के कारण विश्व भर में 70 की उम्र आम बात हो गई है।

अखबारों और पत्रिकाओं में आजकल विज्ञापनों में भी तरोताजा और स्वस्थ उम्र दराज पुरुषों और महिलाओं को देखकर लगता होगा 'ऑल इज वेल'। पर जमीनी हकीकत कुछ और ही है।

हाल ही में नेपाल में जिस तरह 'जेनरल जेड' ने सत्ता पलट कर पुराने नेताओं को देश से भागने पर विवश कर दिया उसने बहुत से उम्रदराज नेताओं की नींद उड़ा दी है।

यहां तक की भारत में युवाओं के लोकप्रिय नेता और लेखक शशि थरूर भी इस परिवर्तन से घबराए हुए हैं और उन्होंने बाकायदा एक लेख लिख कर भारत के युवाओं को चेतावनी दी है कि इस प्रकार के आंदोलन से कभी भी अच्छा परिणाम नहीं निकला है।

लेकिन सबसे पहले लिखने की होड़ में उन्होंने यह नही देखा कि नेपाल के जेनरल जेड ने भी अपने नये प्रधानमंत्री के लिए एक उम्रदराज महिला सुशीला को स्वीकार किया है।

वैसे ही पड़ोसी राज्य बंग्लादेश में भी युवा आंदोलनकारियों ने एक बुजुर्ग मोहम्मद यूनुस को अपने नेता के रूप में स्वीकार किया है। इससे साबित होता है कि आज की युवा पीढ़ी का मकसद सत्ता छीनना नहीं सत्ता परिवर्तन है और वो भ्रष्ट नेताओं को उखाड़कर फेंकना चाहता है। लेकिन आम तौर पर विश्व में बुजुर्गों की बढ़ती संख्या से समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। जर्मनी, फ्रांस, चीन और रूस में तो सरकार ने युवाओं से अपील की है है कि वो और बच्चे पैदा करें।

और अब तो अपने 75 वर्षीय मोहन भागवत जी ने भी लोगों से कहा है कि हर परिवार में कम से कम तीन बच्चे होने चाहिए।बस गनीमत ये है कि उन्होंने यह नहीं कहा कि बच्चा लड़का हो या लड़की।

फिलहाल, एक समय घर के समझदार और बड़े माने जानेवाले वृद्ध जनों को जनता का दुश्मन बनाने में सबसे बड़ा योगदान मार्केटिंग वालों का है जिसने आंकड़े दिखा कर सिद्ध कर दिया कि इनकी बढ़ती संख्या देश की सेहत के लिए हानिकारक है।

इस आंकड़ों की बाजीगरों ने एक समय ये समझाया था कि 2050 तक भारत अपनी युवा शक्ति के कारण विश्व का सबसे समृद्ध देश बन जाएगा! कुछ ऐसी ही भ्रामक भविष्यवाणियां आज भी हो रही हैं। बहुत कम उद्यमी या स्पष्ट वक्ता ये खुल कर बोलने की हिम्मत रखते हैं कि 2047 का विकसित भारत एक बूढ़ा भारत होगा।

एक ऐसा भारत जहां अधिकांश बुजुर्गों की औकात घर में रखे फर्नीचर से भी बदतर होगी जिसके पास ना तो नौकरी होगी ना स्वास्थ्य बीमा और ना ही कोई पेंशन।

युवा पीढ़ी का एक वर्ग कुछ दशक पहले तक DINKS (डबल इनकम नो किड्ह) का फार्मूले पर चल रहा था जिसकी वजह से देश की अर्थव्यवस्था तो आगे बढ़ गई लेकिन युवाओं की संख्या कम होती चली गई।

कुछ ऐसी ही कहानी दूसरे देशों की भी है। जिसकी वजह से जब फ्रांस ने रिटायरमेंट की उम्र बढ़ा दी तो युवा वर्ग सड़क पर निकल आया और सरकार को अपना फैसला वापस लेना पड़ा।

इसी तरह रूस में राष्ट्रपति पुतिन ने अपने युवाओं को समझाया कि परिवार में कम से कम दस लोग होने चाहिए।

इन सब संदर्भों को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ का बुजुर्गों के सम्मान मे बनाया गया स्लोगन हास्यास्पद लगता है। शायद अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ठीक ही कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व की अब कोई वजह नहीं रह गई।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

एशिया कप-अनावश्यक विवाद

भारत ने एशिया कप टी-20 टूर्नामेंट जीत लिया, जैसा कि अनुमान था, लेकिन बीच-बीच में उसे एकाध झटका भी लगा। दुर्भाग्यवश, इस जीत पर हाथ मिलाने और पाकिस्तानी अध्यक्ष (एशियन क्रिकेट काउंसिल के चेयरमैन) से ट्रॉफी न लेने को लेकर पैदा हुआ विवाद हावी रहा। नतीजा यह कि यह टूर्नामेंट भारत की जीत से अधिक इस विवाद के लिए याद किया जाएगा। अगर पाकिस्तान से खेलने पर हमारी आपत्तियां वाकई गंभीर थीं, तो साहस दिखाकर हमें शुरू से ही खेलने से इनकार करना चाहिए था। लेकिन ऐसा न करके और राष्ट्रवादी हरकतों का सहारा लेकर भारत ने अपनी ही जीत को छोटा कर लिया।

याद दिलाना जरूरी है कि भारत ने वर्षों तक रंगभेद (अपार्थाइड) के चलते दक्षिण अफ्रीका से किसी भी खेल में भाग लेने से इनकार किया था और 1974 में डेविस कप टेनिस फाइनल न खेलकर संभावित खिताब त्याग दिया था। वह एक सैद्धांतिक रुख था। तो फिर पाकिस्तान को हराने और पाकिस्तानी सरकार के मंत्री रहे एसीसी प्रमुख से ट्रॉफी लेते हुए अपनी श्रेष्ठता दिखाना कहीं ज्यादा ठोस और प्रभावी जवाब नहीं होता? भले ही हम विजेता के तौर पर गरिमा जैसी पुरानी मान्यताओं में विश्वास न करते हों!

क्रिकेट का पक्ष : खेल की बात करें, तो भले ही भारत के पास अपार ताकत थी, उसे अंतिम दो मैचों में चुनौतियों का सामना करना पड़ा। श्रीलंका के खिलाफ मैच सुपर ओवर तक गया और फाइनल में पाकिस्तान ने शुरुआती 10 ओवरों तक मैच पर पकड़ बना ली थी। भारत का स्कोर 20 पर 3 रहा और हालात बिगड़ते दिखे, लेकिन टीम ने संकटमोचक ढूंढ ही लिए। यह साबित हुआ कि किसी भी दिन, खासकर टी-20 में, कुछ भी हो सकता है- टीम की ताकत मायने नहीं रखती।

भारतीय टीम का प्रदर्शन : विरोधी भले ही बहुत मजबूत न थे, लेकिन भारतीय टीम का प्रदर्शन काबिले गौर रहा। टूर्नामेंट के

अनिल जौहरी

स्टार रहे अभिषेक शर्मा, जो फाइनल में असफल रहे पर लगातार शानदार बल्लेबाजी की। शुभमन गिल के साथ उनकी ओपनिंग साझेदारी ने हर बार भारत को तूफानी शुरुआत दी। आईपीएल में विश्वस्तरीय गेंदबाजों के खिलाफ उनके प्रदर्शन को देखते हुए यह जोड़ी भविष्य में टिकेगी, इस पर भरोसा किया जा सकता है। इस जोड़ी ने संजू सैमसन की ओपनिंग भूमिका को बाधित किया और वे मिडिल ऑर्डर बल्लेबाज के रूप में तालमेल बिठाने की कोशिश करते दिखे। लेकिन सवाल है- क्या बड़े टूर्नामेंट प्रयोग के लिए होते हैं? अमेरिका में हुए टी-20 विश्वकप में विराट कोहली को ओपनिंग में भेजने का प्रयोग लगभग असफल रहा, बस फाइनल में उनका प्रदर्शन टीम मैनेजमेंट को आलोचना से बचा गया।

सूर्य कुमार यादव लंबे समय से नंबर 4 पर खेल रहे थे और तिलक वर्मा नंबर 3 पर। एशिया कप में दोनों की जगह बदल दी गई, जिससे यादव का प्रदर्शन फीका पड़ गया। इसका दबाव मध्यक्रम पर पड़ा और फाइनल में ट्रॉफी हाथ से निकल सकती थी। सूर्या को अपनी भूमिका पर फिर विचार करना चाहिए और नंबर 4 पर ही लौटना चाहिए। तिलक वर्मा टूर्नामेंट की एक और सफलता रहे। फाइनल में उन्होंने मुश्किल स्थिति से भारत को जीत दिलाई और मैन ऑफ द मैच बने। हालांकि पाकिस्तानी बल्लेबाजों को रोकने में स्पिन तिकड़ी की भूमिका भी अहम रही। अपेक्षा के अनुसार स्पिन ने दबदबा बनाया। कुलदीप यादव ने बेहतरीन प्रदर्शन किया, जिन्हें वरुण और अक्षर ने सहयोग दिया।

टीम संयोजन पर सवाल : इसके बावजूद, कई मौकों पर भारतीय गेंदबाजी लड़खड़ाई। इससे एक बड़ा सवाल उठता है- क्या टीम मैनेजमेंट का ऑलराउंडरों पर जरूरत से ज्यादा भरोसा विशेषज्ञ बल्लेबाजों और गेंदबाजों के नुकसान पर भारी पड़ रहा है? टी-20 में आमतौर पर 5 विशेषज्ञ बल्लेबाज, एक विकेटकीपर-बल्लेबाज और फिर 5 विशेषज्ञ गेंदबाजों (जिनमें से एक ऑलराउंडर हो सकता है) का संयोजन होता है। यह बल्लेबाजी क्रम को 7 तक गहराई देता है। क्या यह पर्याप्त नहीं? बल्लेबाजी नंबर 8 तक क्यों खींची जाए? अगर नंबर 8 पर भरोसा है, तो इसका मतलब है कि हमें शीर्ष और मध्यक्रम पर विश्वास नहीं।

इस नीति की वजह से टी-20 विश्वकप के स्टार अर्शदीप सिंह को लगभग नजरअंदाज किया गया। लेकिन एकमात्र अवसर मिलने पर उन्होंने श्रीलंका के खिलाफ सुपर ओवर में शानदार प्रदर्शन किया। मजबूत बल्लेबाजी क्रम वाली टीमों के खिलाफ यह नीति नुकसानदेह साबित हो सकती है। अगर किसी मुख्य गेंदबाज का दिन खराब रहा तो मुश्किलें बढ़ेंगी- जैसा कि एशिया कप में पाकिस्तान के खिलाफ बुमराह के साथ हुआ, जब उन्होंने 4 ओवर में 45 रन दिए बिना विकेट लिए। या फिर फाइनल में कुलदीप ने पहले 2 ओवरों में 23 रन लुटाए, हालांकि अगले 2 ओवरों में 4 विकेट लेकर उन्होंने खुद को साबित कर दिया।

आगे की तैयारी : इस टूर्नामेंट में विरोधी अपेक्षाकृत कमजोर थे- भारत नंबर 1 और पाकिस्तान नंबर 7 टीम थी- इसलिए प्रदर्शन से बहुत ज्यादा निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा। लेकिन हां, इसने उन कमजोरियों की झलक जरूर दी जिन्हें 2026 की शुरुआत में होने वाले टी-20 विश्वकप से पहले दूर करना जरूरी है।

(लेखक नेशनल एक्रेडिटेशन बोर्ड फॉर सर्टिफिकेशन बॉडीज़ के पूर्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी और मानकीकरण के क्षेत्र में एक अंतरराष्ट्रीय प्राधिकरण हैं)

सरदार पटेल को भूलती भजापा

प्रो. प्रदीप माथुर

अग्रणी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू तथा गाँधी परिवार का राजनैतिक और सामाजिक वर्चस्व कम करने और उसको नीचा दिखाने के लिए अपनी राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण भारतीय जनता पार्टी और आरएसएस का प्रचार तंत्र तमाम तरह की भ्रांतियां और झूठ फैलाता रहता है। इनमें एक बात ये भी है कि भारत के प्रथम उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू में बहुत मतभेद थे।

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार पटेल को प्रधानमंत्री होना चाहिए था, लेकिन नेहरू जी उनकी जगह प्रधानमंत्री बन गए और सरदार पटेल के साथ अन्याय हुआ। यह बात वास्तविकता से बहुत दूर है, लेकिन इसको इतनी बार कहा गया है कि सामान्यता लोग इस पर विश्वास करने लगे हैं।

सच यह है कि सरदार पटेल जवाहरलाल नेहरू से आयु में 14 वर्ष बड़े थे और जब भारत स्वतंत्र हुआ तब उनकी आयु 72 वर्ष की थी। वर्ष 1946 में सरदार पटेल को एक बड़ा गंभीर दिल का दौरा आया। जिसके बाद उनका स्वास्थ्य बहुत गड़बड़ हो गया और डॉक्टरों ने कहा कि इनका स्वास्थ्य ऐसा है कि कभी भी इनकी जीवन लीला समाप्त हो सकती है। ऐसी हालत में भारत जब स्वतंत्र हो रहा था, देश में विभाजन की विभीषिका थी, पूरी तरह से चीजे अस्तव्यस्त थी। अंग्रेज लोग भारत को बिल्कुल आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों से निचोड़ कर गए हुए थे। देश को ऐसे समय एक ऐसे प्रधानमंत्री की आवश्यकता थी जो युवा हो, जिसके साथ लोग हो और जो देश के निर्माण को एक नई दिशा दे सके। इस कार्य के लिए अपने स्वास्थ्य और आयु की वजह से सरदार पटेल उपयुक्त नहीं थे।

इसलिए महात्मा गाँधी ने जवाहरलाल नेहरू को प्रधानमंत्री बनाने की बात कही। इस बात को न कह कर भाजपा आरएसएस प्रचार तंत्र हमेशा यह कहता रहता है कि सरदार पटेल के बराबर प्रशासनिक दक्षता न होने के बाद भी नेहरू जी को प्रधानमंत्री बनाया गया। यह एक बहुत बड़ा झूठ है। इसी तरह से भारतीय जनता पार्टी और आरएसएस के प्रचारतंत्र ने और भी कई लोगों को नेहरू के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की है। इनमें सरदार भगत सिंह भी हैं। इस विषय में भी तमाम झूठ कहा गया है। ये कहा गया कि नेहरू जी नहीं चाहते थे कि भगत सिंह को कानूनी सहायता मिले जिससे वह मृत्युदंड से बच जाएं।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के बारे में कहा गया कि नेहरू जी का उनसे विरोध था और प्रधनामंत्री बनने के बाद नेहरू जी ने यह प्रयास किया कि देश उनको भूल जाये। ये दोनों बातें भी बिल्कुल झूठ है। सच तो ये है कि वैचारिक मतभेद होते हुए भी नेहरू जी नेताजी सुभाष चंद्र बोस को महान देश भक्त मानते थे और नेताजी भी महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू तथा कांग्रेस के अन्य वरिष्ठ नेताओं के प्रति असीम आदर भाव रखते थे।

सरदार पटेल को नेहरू के विरुद्ध दिखाने और आगे बढ़ाने में भाजपा आरएसएस प्रचार तंत्र ने कभी कोई कसर नहीं छोड़ी। जबकि सच तो ये है कि आरएसएस पर बैन सरदार पटेल ने लगाया था। आरएसएस के सरसंघचालक। गुरु गोलवालकर को सरदार पटेल ने जेल में डाला था और उन्होंने ये कहा था कि आरएसएस देश में जहर फैला रहा है,

नफरत का माहौल बना रहा है, जिसके कारण महात्मा गाँधी की हत्या हुई है। महात्मा गाँधी की हत्या एक ऐसा आघात था जिससे सरदार पटेल अपने जीवन के आखिरी दिन तक उभर नहीं पाए।

वर्ष 1944 की बात है गुजरात में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, सरदार पटेल उसके अध्यक्ष थे। पहले दिन सत्र में ज्यादा लोग नहीं आए थे। अगले दिन एकदम से बहुत भीड़ आने लगी। सरदार पटेल बहुत खुश हुए, बोले मेरे सत्र में इतने लोग आ रहे हैं, लेकिन दूसरे क्षण उन्होंने ये भी कहा कि आज जवाहर आ गया है इसलिए लोग उसको देखने के लिए आ रहे हैं और भीड़ बढ़ रही है। सरदार पटेल को पता था कि जवाहरलाल नेहरू ने देश के जनमानस को प्रभावित किया हुआ है। वो उनकी आशाओं में आकलंशों में छाये हुए हैं और इस कारण वो एक कहीं अधिक लोकप्रिय नेता थे। आम जनता के बीच लोकप्रियता जितनी जवाहरलाल नेहरू को मिली थी, उतनी उनके युग के किसी भी और नेता के पास नहीं थी। इस कारण भी आवश्यक था कि ऐसे जनप्रिय व्यक्ति को ही देश का प्रधानमंत्री बनाया जाए।

यदि आज हम भाजपा की बात करें तो नरेंद्र मोदी देश के प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बने कि वो भाजपा के अन्य नेताओं के मुकाबले बहुत ज्यादा काबिल थे या सबसे वरीष्ठ थे। वो इसलिए बने वो सबसे अधिक लोकप्रिय थे। इन सब बातों को भुला करके भाजपा सरदार पटेल को नेहरू के प्रति खड़ा करती है और इस तरह से जवाहरलाल नेहरू और उनके परिवार का स्तर नीचा करने का प्रयास होता है। लेकिन अब लगता है कि भाजपा, आरएसएस, प्रचार तंत्र अपने ही बनाए हुए जाल में फंसा जा रहा है। इस कारण वो अब सरदार पटेल को भी भूलने लगे हैं और अब उन्हें पता है कि सरदार पटेल को आगे बढ़ाकर के उन्हें कुछ भी हासिल नहीं होने वाला है।

पिछले वर्ष सरदार वल्लभभाई पटेल की 74वीं पुण्यतिथि 15 दिसम्बर को बीजेपी के नेतृत्व वाली मोदी सरकार द्वारा नई दिल्ली में किसी भव्य आयोजन के बिना बीत गई। 'देखना यह है कि इस माह उनकी पुण्यतिथि पर कुछ होता है या नहीं।' सरदार पटेल के प्रति भाजपा-आरएसएस तंत्र की यह उदासीनता चिंताजनक है। राजनीतिक में कई सवाल उठे। यह शांत दृष्टिकोण सवाल उठाता है- क्या बीजेपी के सांप्रदायिक राजनीति के एजेंडे के लिए सरदार पटेल अब अप्रासंगिक हो गए हैं? और यदि हां, तो क्यों?

सरदार वल्लभभाई पटेल भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। महात्मा गांधी के करीबी सहयोगी और शिष्य, पटेल ने भारत के पहले उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री के रूप में 550 रियासतों के भारतीय संघ में एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयासों ने भारत की सिविल सेवा प्रणाली की नींव रखी, जो इसकी शासन व्यवस्था का मुख्य आधार है। हालांकि, बीजेपी की राजनीतिक रणनीति के लिए पटेल की इन उपलब्धियों से अधिक महत्वपूर्ण उनके और जवाहरलाल नेहरू के बीच वैचारिक मतभेद रहे हैं, जिन्हें बीजेपी ने हमेशा अपना वैचारिक विरोधी माना है।

संघ परिवार-बीजेपी का वैचारिक आधार-ने अक्सर पटेल को एक रूढ़िवादी, हिंदू नेता के रूप में चित्रित किया, जिनकी विचारधारा नेहरू की तुलना में उनके दृष्टिकोण के अधिक करीब थी। प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में, पटेल की विरासत का उपयोग नेहरू, नेहरू-गांधी परिवार और कांग्रेस पार्टी की आलोचना करने और बीजेपी के 'कांग्रेस-मुक्त भारत' के विजन को आगे बढ़ाने के लिए एक राजनीतिक उपकरण के रूप में किया गया। पटेल के कद को नेहरू के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया। नेहरू को 'ब्रिटिश समर्थक' के रूप में चित्रित किया गया, जिन्होंने गुजरात के 'अन्यायित पुत्र' पटेल से प्रधानमंत्री पद छीन लिया।

एक नजर में : सरदार वल्लभभाई पटेल की 74वीं पुण्यतिथि 15 दिसम्बर को बिना किसी भव्य आयोजन के बीती, जिससे राजनीतिक सवाल उठने लगे हैं कि क्या बीजेपी के सांप्रदायिक एजेंडे के लिए पटेल अब अप्रासंगिक हो गए हैं।

पटेल, जो स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता थे, ने 550 रियासतों के एकीकरण में

सरदार वल्लभभाई पटेल की 74वीं पुण्यतिथि 15 दिसम्बर को बिना किसी भव्य आयोजन के बीती, जिससे राजनीतिक सवाल उठने लगे हैं कि क्या बीजेपी के सांप्रदायिक एजेंडे के लिए पटेल अब अप्रासंगिक हो गए हैं।

पटेल, जो स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता थे, ने 550 रियासतों के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, बीजेपी ने उन्हें नेहरू के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया है। पटेल की विरासत का उपयोग नेहरू और कांग्रेस की आलोचना के लिए किया गया, लेकिन हाल के वर्षों में उनका महत्व कम होता गया है।

अहमदाबाद के क्रिकेट स्टेडियम का नाम 'नरेंद्र मोदी स्टेडियम' रखने से यह स्पष्ट होता है। पटेल की गांधीजी के साथ निकटता और उनके द्वारा आरएसएस पर लगाए गए प्रतिबंध ने बीजेपी के लिए उनकी विरासत को चुनौतीपूर्ण बना दिया है। पटेल की जटिल विरासत आज भी राजनीतिक विमर्श में महत्वपूर्ण है।

स्टैच्यू ऑफ यूनिटी-दुनिया की सबसे ऊंची मूर्ति-के निर्माण में हुआ, जो पटेल के सम्मान में बनाई गई थी। एक चीनी कंपनी द्वारा निर्मित और 2018 में धूमधाम से उद्घाटन किया गया यह विशाल स्मारक पटेल को भारत के इतिहास में उनका 'सही स्थान' दिलाने का प्रतीक था।

इस आयोजन को मीडिया में व्यापक कवरेज मिला, जिससे बीजेपी की कथा को मजबूती मिली। पार्टी की मीडिया प्रबंधन मशीनरी और आईटी सेल ने इस कहानी को बढ़ावा देने और नेहरू, नेहरू-गांधी परिवार और कांग्रेस पार्टी को बदनाम करने के लिए लगातार काम किया।

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, बीजेपी ने उन्हें नेहरू के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया है। पटेल की विरासत का उपयोग नेहरू और कांग्रेस की आलोचना के लिए किया गया, लेकिन हाल के वर्षों में उनका महत्व कम होता गया है। अहमदाबाद के क्रिकेट स्टेडियम का नाम 'नरेंद्र मोदी स्टेडियम' रखने से यह स्पष्ट होता है। पटेल की गांधीजी के साथ निकटता और उनके द्वारा आरएसएस पर लगाए गए प्रतिबंध ने बीजेपी के लिए उनकी विरासत को चुनौतीपूर्ण बना दिया है। इस प्रकार, पटेल की जटिल विरासत आज भी राजनीतिक विमर्श में महत्वपूर्ण है।

इस कथा का चरमोत्कर्ष गुजरात में स्टैच्यू ऑफ यूनिटी-दुनिया की सबसे ऊंची मूर्ति-के निर्माण में हुआ, जो सरदार पटेल के सम्मान में बनाई गई थी। एक चीनी कंपनी द्वारा निर्मित और 2018 में धूमधाम से उद्घाटन किया गया यह विशाल स्मारक पटेल को भारत के इतिहास में उनका 'सही स्थान' दिलाने का प्रतीक था। इस आयोजन को मीडिया में व्यापक कवरेज मिला, जिससे बीजेपी की कथा को मजबूती मिली। पार्टी की मीडिया प्रबंधन मशीनरी और आईटी सेल ने इस कहानी को बढ़ावा देने और नेहरू, नेहरू-गांधी परिवार और कांग्रेस पार्टी को बदनाम करने के लिए लगातार काम किया। इस रणनीति ने बीजेपी की हिंदुत्व विचारधारा को मजबूत किया, जिसमें मोदी को भारत के अंतिम नेता के रूप में पेश किया गया, जो देश को 'विश्व गुरु' बनाने में सक्षम हैं।

नोटबंदी और वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) जैसी नीतियों पर आलोचना के बावजूद, बीजेपी की मीडिया रणनीति ने 2019 के आम चुनावों में निर्णायक जीत सुनिश्चित की। हालांकि, पटेल को नेहरू के खिलाफ खड़ा करने की कथा में दरारें दिखने लगीं। समय के साथ, संघ परिवार के भीतर प्रधानमंत्री मोदी का कद इतना बढ़ गया कि पटेल की भूमिका तुलनात्मक रूप से कम हो गई। यह बदलाव तब स्पष्ट हुआ जब अहमदाबाद के दुनिया के सबसे बड़े क्रिकेट स्टेडियम, जिसे पटेल के नाम पर नामित किया जाना था, को 'नरेंद्र मोदी स्टेडियम' नाम दिया गया।

पटेल-केंद्रित कथा को चुनौती देने वाला एक अन्य मुद्दा ऐतिहासिक तथ्य था, जिसने नेहरू और पटेल के बीच व्यक्तिगत सद्भावना और आपसी सम्मान को उजागर किया। हालांकि उनके वैचारिक मतभेद उनके अलग-अलग पृष्ठभूमि से उपजे थे, लेकिन पटेल ने प्रधानमंत्री पद के लिए नेहरू को समर्थन दिया, यह मानते हुए कि नव-स्वतंत्र देश को एक युवा, गतिशील जन नेता की आवश्यकता थी।

इसी तरह, गांधीजी की हत्या के बाद पटेल के त्यागपत्र की पेशकश को नेहरू ने अस्वीकार कर दिया, जो उनके व्यक्तिगत संबंध को रेखांकित करता है। गांधीजी की हत्या के बाद आरएसएस पर पटेल के कड़े रुख ने बीजेपी के हिंदुत्व विचारधारा को पटेल के साथ जोड़ने के प्रयास को और अधिक जटिल बना दिया। पटेल ने न केवल आरएसएस पर प्रतिबंध लगाया, बल्कि इसके पुनर्गठन के लिए सख्त शर्तें भी लगाईं, जिससे हिंदुत्व की विचारधारा पर सवाल उठ खड़े हुए।

इसके अलावा, महात्मा गांधी के साथ पटेल की निकटता बीजेपी के लिए एक और दुविधा बन गई। गांधी का अहिंसा, समावेशिता और धर्मनिरपेक्षता का दर्शन बीजेपी की राजनीतिक संरचना के विपरीत है। इसी प्रकार, गांधीजी की दृष्टि के साथ पटेल की संगति ने उनकी विरासत को बीजेपी के कथा के साथ मेल बिठाने के लिए चुनौतीपूर्ण बना दिया। जब तक गांधीवादी आदर्श भारत की पहचान के केंद्र में बने रहते हैं, संघ परिवार की विचारधारा राष्ट्रीय विमर्श पर पूरी तरह से हावी होने के लिए संघर्ष करती रहेगी। इस संदर्भ में, पटेल की विरासत बीजेपी के दीर्घकालिक उद्देश्यों के लिए कुछ हद तक असुविधाजनक हो गई है।

सरदार पटेल के भारत के स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्र निर्माण में किए गए महान योगदान निर्विवाद हैं। हालांकि, राजनीतिक लाभ के लिए उनकी विरासत का चयनात्मक उपयोग अपनी सीमाएं रखता है। पटेल से जुड़ी वैचारिक विरोधाभास और ऐतिहासिक वास्तविकताएं उनके कद को बीजेपी के एजेंडे के प्रतीक के रूप में बनाए रखना कठिन बनाती हैं। फिलहाल, पटेल की विरासत भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की जटिलताओं और उन विविध दृष्टिकोणों की याद दिलाती है, जिन्होंने देश की नियति को आकार दिया। शांति से विश्राम करें, सरदार पटेल।

कन्या : डर की जंजीरों से आजादी की लड़ाई

देश में आज नवरात्र की आरती गूंज रही है। हर घर, हर मंदिर में देवी की पूजा हो रही है। लोग माँ सरस्वती से ज्ञान का आशीर्वाद मांग रहे हैं, माँ लक्ष्मी से धन की भीख, और माँ दुर्गा से शक्ति की कामना। देखकर लगता है जैसे इस भारत भूमि पर स्त्रियों का सबसे अधिक सम्मान होता होगा। लेकिन जब असल जीवन की आँख खोलते हैं, तो एक कड़वी सच्चाई सामने आती है–

- जहाँ देवी की मूर्ति को चाँदी-सोने के सिंहासन पर बिठाया जाता है, वहीं उसी देश की बेटियों को गर्भ में ही मार दिया जाता है। जहाँ 'नारी तू नारायणी' कहा जाता है, वहीं बेटियां दहेज की आग में जलती हैं।
- जहाँ नारी को शक्ति का स्वरूप कहा जाता है, वहीं उसकी आवाज़ को 'चुप रहो' कहकर दबा दिया जाता है। जहाँ देवी की मूर्ति पर फूल-माला चढ़ाई जाती है, वही बेटियों के ऊपर एसिड फेंका जाता है।
- जहाँ देवी के चरणामृत को पिया जाता है, वहीं पत्नी, बहुओं को लातों से मारा जाता है। जहाँ सबसे पहले भोग देवी को लगाया जाता है, वही बहुओं, बेटियों को सबसे आखिर में खाना खाने दिया जाता है।
- जहाँ नारी को उनके पसंदीदा इंसान से शादी न करा कर, उसी बेटी की कही और जबरदस्ती शादी करा कर किसी अनजान पुरुष के साथ बलात्कार होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

इसी देश में 19 वर्ष मनीषा का बलात्कार कर जान से मार फेंक दिया जाता है, वहीं प्रशासन ने किसी जानवर ने खाया है इसे और मर्डर नहीं है ये सुसाइड कहकर केस बन कर दिया जाता है। इसी देश में निक्की को जलाकर मार दिया जाता है। अब सीबीआई आये या यूएन किसी को कुछ नहीं मिलेगा। पुलिस ने कर ली है इन्वेस्टिगेशन अब ना कोई सबूत बचेगा और ना ही कोई गवाह मिलेगा। पर सबसे एक सवाल है, जिन्हें गुस्सा तो आता है पर डर के वजह से आवाज नहीं निकलती। तुम कब तक प्रेम करती रहोगी उस समाज से जिस समाज ने कभी तुमसे प्रेम नहीं किया। तुम कब तक प्रेम करती रहोगी ? उस समाज

प्रशांत गौतम

से जिस समाज ने तुम्हें हमेशा छोटा बनने का आदेश दिया। तुम कब तक प्रेम करोगी ? उस समाज से जो समाज कभी थाने में तो कभी रास्ते में तुम्हारी धज्जियां उड़ा देता है।

तुम कब तक प्रेम करोगी उस समाज से जो समाज तुम्हारा बलात्कार करके तुम्हारा गला काट देता है ? तुम कब तक बनी रहोगी शून्य और अभिमान करोगी जौहर का मिट जाने का, लुट जाने का, जल जाने का, कट जाने का। तुम कब तक करोगी पूजा पर तांडव नहीं दिखाओगी। तुम कब तक पहनोगी चूड़ा तलवार नहीं उठाओगी। तुम कब तक करोगी प्रेम और फिर में मारी जाओगी।

- तुम कब तक रहोगी मामूली, बेघर दुत्कारी जाओगी, तुम कब तक करोगी ? कृष्णा-कृष्णा और अपना चीर हरण करवाओगी। उठाओगी पूरी दुनिया के सम्मान का बोझा पर तलवार नहीं उठाओगी।
- तुम जब तक बनोगी, आज्ञाकारी मुफ्त में बेची जाओगी, तुम जब तक रहोगी संस्कारी संस्कारों से नोची जाओगी। अब तो भोले भंडारी भी थक गए तुमको देखकर कब माथे पे तिलक लगा के रौद्र रूप अपनाओगी। कब तक चढ़ोगी भोग तुम उनकी, तलवार कब उठाओगी,
- कब तक अपने सपनों की बली दूसरों के लिए चढ़ाओगी। कब तक बचाओगी चूड़ा से अपनी लाश तलवार कब उठाओगी ? तो यह पूजा किसलिए है ? यह दिखावा किसलिए है ?
- अगर सचमुच नारी की पूजा करनी है, तो उसकी ज़िंदगी में बराबरी और इज्जत दो, उसकी आत्मा से डर की जंजीरें उतारो। एक लड़की जन्म लेती है और उसी दिन से उसे डर विरासत में मिल जाता है। बचपन से उसे सिखाया जाता है– 'मासिक धर्म अपवित्र है।' 'मंदिर मत जाओ, भगवान नाराज़ हो जाएंगे।' 'पिता और भाई को छू लो तो उनकी उम्र कम हो जाएगी।' छोटी बच्ची को उसके ही शरीर से घृणा करना सिखा दिया गया। उसे बताया गया कि वह गंदी है, अपवित्र है। उसकी मासूमियत पर समाज ने पाप का दाग़ लगा दिया।
- फिर कहा गया– 'ज्यादा मत पढ़ना, वरना हाथ से निकल जाओगी।' 'पढ़-लिख ली तो शादी कौन करेगा ?' असल डर ये नहीं था कि शादी नहीं होगी, असल डर ये था कि लड़की अगर पढ़-लिख गई तो अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाएगी, अपने हक की मांग करेगी, बराबरी का हक छीन लेगी।
- लड़कियों के कपड़ों पर पहरे बिठा दिए गए। अगर किसी ने छेड़ा तो कहा गया– 'गलती तुम्हारी है।' समाज ने बलात्कारी से नहीं, पीड़िता से सवाल पूछे। क्या यही न्याय है ? क्या यही इंसानियत है ? लेकिन नारी कमजोर नहीं पड़ी।
- औरत ने हर अपमान के बीच भी मुस्कुराना सीखा। लेकिन सवाल यही है। क्या यह लड़ाई सिर्फ औरत अकेले लड़े ? क्या बराबरी का बोझ सिर्फ उसी के कंधे पर है ?
- बदलाव तभी आएगा जब लड़के भी इस आवाज़ में शामिल होंगे। क्योंकि पितृसत्ता ने लड़कों को भी कैद किया है। उन्हें भी कहा गया–'मर्द रोते नहीं।' 'अगर तू औरत को कंट्रोल नहीं करेगा, तो तू कमजोर है।' यानी, मर्दानगी के नाम पर लड़कों से भी उनकी असली इंसानियत छीन ली गई।
- बराबरी का मतलब सिर्फ औरत को हक देना नहीं है, बल्कि लड़कों को भी झूठी मर्दानगी से आज़ाद करना है। आज ज़रूरत है कि हर लड़का यह कहे– 'मेरी बहन का सपना उतना ही बड़ा है जितना मेरा।'
- 'मेरी पत्नी की नौकरी बोझ नहीं, मेरा गर्व है।' 'मेरी बेटी मेरे लिए बोझ नहीं, मेरी ताक़त है।' नारी को रक्षक नहीं, साथी चाहिए। नारी को सहानुभूति नहीं, सम्मान चाहिए। औरत कभी कमजोर नहीं थी। वह वही है जिसने समाज को जन्म दिया।

नारी की लड़ाई सिर्फ औरत की नहीं।
ये हर इंसानियत की लड़ाई है।

हे माँ लक्ष्मी कर प्रकाश समृद्धि प्रेम वृद्धि का

जहाँ दीपावली पर्व श्रीगणेश की विघ्नहारी सूरत और महालक्ष्मी की भव्य मूरत मन में साकार करता है वहीं मन-मस्तिष्क में पचास वर्ष पुरानी दीवाली की कसक भी मन में जगाता है। श्री लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियों दीयों व खील-बताशों के अलावा कुछ भी बाजार से नहीं आता था। बरसात से बेरंग हुए घरों की लिपाई-पुताई महीनाभर पहले शुरू हो जाती थी। सफाई-सजावट सब घर के सदस्य मिलजुलकर करते। वो रोली, आलते व गेरू से दरो-दीवार पर कमल, शंख, सतिया व लक्ष्मीजी के चरण कमल आदि शुभ-चिह्न बनाना। आँगन में तुलसी का चौबारा सजाना। छोटे-बड़े मिट्टी के कलशों को रंगों वजरी गोटे से सजाना। रंगीन कागज व पन्नियाँ काट-काटकर आटे की लेई से चिपकाकर झाड़-फानूस तोरण झंडियों की लहरियाँ बनाना। नए-नए पकवान बनाना सीखना पड़ोस की चाची, ताई व अम्मा से। नए-नए कपड़े बनाना- सबकुछ एक पवित्र पर्व के सौंदर्यमय भावपूर्ण आयोजन जैसा। सब कलाओं को पूर्णता देना, सब सुंदर और साफ-सुथरा करना श्री लक्ष्मी का कृपा-पात्र बनने के लिए।

दीपावली से कुछ दिन पहले घर की किसी एक दीवार पर खूब बड़ी सी सफेद चादर या कागज की बड़ी-सी शीट लगा दी जाती थी और पास ही कुछ प्राकृतिक रंग केसर, टेसू, गेरू आदि रख दिए जाते और घर के छोटे-बड़े सबको हिदायत दे दी जाती कि आते-जाते जब भी मन हो इस पर कुछ न कुछ अवश्य चित्रित करें जो दीवाली तक पूरा हो जाए। और दीवाली तक एक अति सुंदर, अनुपम भित्तिचित्र तैयार हो जाता था पूजा के लिए। एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात जो

प्रणाम मीना ऊँ
प्रणेता प्रणाम अभियान, नोएडा

आज तक निभाने का आभार है, बचपन में हमें सिखाया गया कि अगर दीपावली की अमावस्या के दिन जो भी कलाएँ तुम जानते हो उनका थोड़ा-थोड़ा भी कर लो तो जीवनभर नहीं भूलेंगी। आपका साथ नहीं छोड़ेंगी। कलाओं में पूर्णता हो तो ऐश्वर्य दूर कहाँ।

श्री लक्ष्मी तो पूर्णता के प्रतीक श्री विष्णु के चरण दबाती हैं या यूँ कहें जब लक्ष्मी आए तो आपकी सेविका बने सिर पर सवार न हो। श्री लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। जिसने रातभर जाग-जागकर ज्ञान ग्रहण कर विकास की तपस्या की हो वो जहाँ कहीं भी जाए लक्ष्मी साथ होगी।

हर पर्व उसकी पूजा-विधि का एक सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व है। पहले नए कपड़े साल में दो बार होली दीवाली पर ही बनते थे। सालभर सादगी से रहना। न शापिंग का झगड़ा, न रोज नए कपड़े-जेवर पहनकर क्लबों व पार्टियों में फैशन परेड जैसा दिखावा। दीवाली पूजन के बाद छोटी-छोटी थालियों में खील-बताशे व हाथ की बनी शुद्ध मिठाई, घर के फूल-पत्ती कढ़े रूमाल या क्रोशिए से बने जालीदार कपड़े से ढके प्रसाद को आसपास निःस्वार्थ प्रेम व शुभकामनाओं सहित देने जाने का आनन्द स्वर्गिक था। आज जिसे किसी से कुछ मतलब हो या बिज़नेस लिया हो उसी हिसाब से मिठाई के पैकेटों व भेंटों के डिब्बों का साइज घटता-बढ़ता है और एक रस्मी तौर पर यंत्रवत-सा 'लैफड़' के अंदाज का हावभाव व हैपी दीवाली के बनावटी उद्‌गार सहित एक-दूसरे के यहाँ माल पटका जाता है। कुछ को तो इंतजार रहता है कि फलाने का इतना-उतना काम किया, देखें क्या लाता है दीवाली पर। दीवाली न हुई रिश्वतखोरी का बहाना हो गया।

कहां खो गई वह सादगी जब गणेश लक्ष्मी की मूर्तियां न होने पर भी दो पान के पत्ते दीवार पर लगाकर उस पर आटे से दो सिक्के चिपका कर लक्ष्मी गणेश पूज लिए जाते थे। रामायण पढ़ना, गए साल के दामों का विवरण लिखना घर के हिसाब का लेखा जोखा, घर के बच्चों को बज़ट बनाना सिखाना बही लिखना। यही सब विद्या ज्ञान, लक्ष्मी के रख-रखाव का, संस्कार दान का कारण होता था। दीपावली के शुभ दिनों में सात्विकता, शुचिता, उल्लास व शुभकामनाओं के विस्तार का समां बंध जाता था।

ताश में जुए के नाम पर भी बादाम या बताशे दांव पर लगा कर सगुन कर लेते थे। मन में आता तो है कि एक वह थी दीवाली एक आज की दीवाली-उजड़ते हुए गुलशन रोते हुए माली। पर फिर भी एक आशा कि किरण अदम्य उमंग भर देती है। संस्कृति के सच्चे धरोहरों की तपस्या अवश्य रंग लाएगी। वो सुबह जरूर आएगी जब सुहानी मुस्कुराहटों के दीप जलेंगे। उस सुप्रभात की आशा में आओ मन का दीपक जलाएं इतना उजाला करें मन में कि चारों ओर प्रेम व सत्य का प्रकाश फैले यही है प्रणाम के प्रेरक लेखों का उद्देश्य। ■■■

दिवाली पर्व पर चित्रगुप्त पूजन का महत्व

कर्म के लेखाकार-भगवान श्री चित्रगुप्त जी महराज न्याय, ज्ञान और लेखनी के देवता की आराधना का महत्व निम्न संदर्भों से समझा जा सकता है-

पद्म पुराण : पद्म पुराण के अनुसार, 'चित्रगुप्त को सभी प्राणियों के अच्छे और बुरे कार्यों को दर्ज करने के लिए धर्मराज के पास रखा गया था, वे अलौकिक ज्ञान से संपन्न थे और देवताओं व अग्नि को अर्पित

राजेश श्रीवास्तव

किए गए बलिदानों में भागी बने। यही कारण है कि द्विज हमेशा उन्हें अपने भोजन से आहुति देते हैं। ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न होने के कारण उन्हें पृथ्वी पर अनेक गोत्रों का कायस्थ कहा गया।

भविष्य पुराण : भविष्य पुराण में कहा गया है कि सृष्टिकर्ता भगवान ने चित्रगुप्त का नाम और कर्तव्य इस प्रकार बताए- 'चूंकि तुम मेरे शरीर से उत्पन्न हुए हो, इसलिए तुम कायस्थ

कहलाओगे और संसार में चित्रगुप्त के नाम से प्रसिद्ध होगे। हे पुत्र, मनुष्यों के पाप-पुण्य का निर्णय करने के लिए तुम्हारा निवास सदैव न्याय के देवता के लोक में रहे।'

गरुड़ पुराण : भगवान श्री चित्रगुप्त जी को गरुड़ पुराण में 'अक्षरों के दाता' कहा गया है (चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं वेदाक्षरादत्रे)। चित्रगुप्त की कथाओं के साथ-साथ वेदों में भी, उन्हें सबसे महान राजा कहा गया है, जबकि बाकी सभी राजा, राजक या छोटे राजा हैं।

चित्र इद राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु। पर्जन्य इव ततनद धी वर्षत्या सहस्रमुता ददत्॥ (ऋग्वेद)

महाभारत : महाभारत (अनुशासन पर्व, अध्याय 130) में चित्रगुप्त की शिक्षा का उल्लेख है जिसमें मनुष्यों को पुण्य और दान-पुण्य के कार्य करने तथा यज्ञ करने की आवश्यकता बताई गई है, तथा कहा गया है कि मनुष्यों को उनके अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार पुरस्कृत या दंडित किया जाता है।

यम संहिता : एक बड़े केंद्रीय फलक पर न्याय के देवता यम सिंहासन पर विराजमान हैं दाईं ओर चित्रगुप्त विराजमान हैं, जिन्हें प्रत्येक मनुष्य का विस्तृत विवरण रखने और उनकी मृत्यु के बाद उनके पूर्व कर्मों के आधार पर यह तय करने का कार्य सौंपा गया है कि उनका पुनर्जन्म कैसे होगा। यम संहिता, हिंदू धर्म की एक कृति, अहिल्या कामधेनु के 9वें अध्याय का एक अंश है। प्रत्येक संदर्भों से यह स्पष्ट है कि दुनिया का प्रत्येक धर्म, कर्म पर टिका है और कर्म का लेखा-जोखा रखने वाले हैं भगवान श्री चित्रगुप्त जी। यह कोई कोरी कल्पना नहीं है बल्कि यथार्थ है- ये वही दिव्य शक्ति-पुंज हैं जो परमपिता, परमब्रह्म श्री ब्रह्मा जी के 17वें और अंतिम मानसपुत्र हैं, जो परमपिता के चित्त में गुप्त थे और उनकी काया से उत्पन्न हुए इसलिए 'चित्रगुप्त कायस्थ' कहलाये जिन्हें परमपिता से दिव्य दृष्टि प्राप्त है, और परमपिता के आदेशानुसार यमलोक में रहते हुए धर्मराज की सहायता के लिए उन्हें हर जीव के कर्मों का सूक्ष्म से सूक्ष्म लेखा जोखा रखने का कार्य सौंपा गया।

ज्ञान और न्याय के अधिष्ठाता : भगवान श्री चित्रगुप्त जी धर्मराज के सचिव हैं। वे हर जीवात्मा के जीवन की डायरी तैयार करते हैं, ताकि जीवात्मा की मृत्यु के बाद सच्चा न्याय सुनिश्चित हो सके। उनकी पूजा अर्चना हमें सिखाती है- 'कर्म का फल निश्चित है, इसलिए कर्म पवित्र रखो।' क्योंकि भगवान श्री चित्रगुप्त जी की लेखनी कभी झूठ नहीं लिखती, इसलिए सदा अपने कर्मों को 'सत्य के स्याही में लिखो' और यह सुनिश्चित है कि जहां कर्म पवित्र हों, वहां भगवान श्री चित्रगुप्त जी की कृपा स्वयं उतर आती है।' भगवान श्री चित्रगुप्त की पूजा सदैव हमें याद दिलाती है और आगाह भी करती है कि हमें अपने जीवन की डायरी में हर अध्याय खुद लिखना है, ताकि भगवान श्री चित्रगुप्त जी की कलम- जब उसका सिंहावलोकन करे तो गर्व से कहे- यह जीवात्मा सच्चा था।

भगवान श्री चित्रगुप्त जी की पूजा केवल परंपरा नहीं : यह प्रत्येक जीवात्मा के लेखे का वार्षिक लेखा-जोखा है। जिसे आम बोलचाल की भाषा में तलपट भी कहा जाता है अर्थात हम वार्षिक तौर पर भी अपने कर्मों का स्वयं लेखा जोखा देखें-आत्म निरीक्षण-परीक्षण करें और अनजाने में कुछ गलत हो भी गया हो, तो आगे यहीं पर सुधार भी करने का यत्न किया जा सकता है, क्योंकि धर्मराज के सामने उपस्थित होने से पूर्व अपने आप में सुधार करने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं। भगवान श्री चित्रगुप्त जी का प्रमुख कार्य प्रत्येक जीव के जन्म से मृत्यु तक किए गए सभी कर्मों का सूक्ष्म विवरण रखना है। उनकी पूजा हमें यह शिक्षा देती है कि- 'कर्म का फल निश्चित है, इसलिए अपने कर्मों को सदा धर्ममय रखो।'

यम द्वितीया पर विशेष पूजा : दीपावली के दूसरे दिन, भाई दूज (यम द्वितीया) के अवसर पर भगवान श्री चित्रगुप्त जी की विशेष पूजा की जाती है। इस दिन लोग कलम, दवात, रजिस्टर और पुस्तकों की पूजा करते हैं। यह परंपरा केवल धार्मिक नहीं, बल्कि ज्ञान, ईमानदारी और आत्म-चिंतन का प्रतीक है। यह दिन हमें याद दिलाता है कि ज्ञान ही सबसे बड़ा धन है और सत्यनिष्ठा उसका सबसे बड़ा आभूषण।

कायस्थ समाज के आराध्य : कायस्थ समाज भगवान श्री चित्रगुप्त जी को अपना आराध्य मानता है। वे सृजन, लेखन, गणना और ज्ञान के प्रतीक हैं, जो व्यक्ति सत्य, निष्ठा और धर्म के पथ पर चलता है,उसके जीवन में सदैव भगवान श्री चित्रगुप्त जी की कृपा बनी रहती है।

जीवन का संदेश : भगवान श्री चित्रगुप्त जी पूजा का मूल भाव है- जीवन में हर कर्म का लेखा है, इसलिए आप अपने हर कर्म को पवित्र बनाओ। यह पर्व हमें कर्तव्यनिष्ठा, आत्मनिरीक्षण और सत्य के मार्ग पर दृढ़ता से चलने की प्रेरणा देता है। 'भगवान श्री चित्रगुप्त जी की लेखनी कभी झूठ नहीं लिखती, इसलिए सदा अपने कर्मों को सत्य की स्याही में लिखो।'

भगवान श्री चित्रगुप्त जी पूजा का सार : कर्मों के लेखे का प्रतीक पर्व-ज्ञान, न्याय और सत्यनिष्ठा की साधना कलम-दवात की पूजा से आत्मशुद्धि का संदेश, ईमानदार जीवन और कर्तव्यपरायणता का संकल्प- भगवान श्री चित्रगुप्त जी की कथा ज्ञान, कर्म, धर्म और न्याय की शिक्षा देती है और उनकी पूजा कलम, विद्या एवं बुद्धि से जुड़े सभी लोगों के लिए शुभ मानी जाती है। भगवान श्री चित्रगुप्त जी को समर्पित अनेक मंदिर हैं, उल्लेखनीय उदाहरणों में शामिल हैं-

1. **भगवान श्री चित्रगुप्त जी प्राकट्य तीर्थ, उज्जैन, मध्य प्रदेश :** ऐसा माना जाता है कि भगवान ब्रह्मा के शरीर से प्रत्यक्ष प्रकट हुई दिव्य भगवान श्री चित्रगुप्त जी, प्राचीन नगरी अवंतिका, जिसे आज उज्जैन के नाम से जाना जाता है, में श्रीकृष्ण विद्या स्थली (सांदीपनि आश्रम) के पीछे स्थित श्री चित्रगुप्त प्राकट्य तीर्थ नामक पवित्र स्थल पर प्रकट हुए थे। इस पवित्र भूमि को प्राचीन काल से ही अत्यधिक पूजनीय स्थल माना जाता रहा है और पद्म पुराण एवं इस्कंद पुराण में इसकी महिमा का वर्णन है। यह पूजनीय स्थान लंबे समय से धर्म, स्मृति और न्याय के दिव्य देवता भगवान चित्रगुप्त की पूजा के लिए जाना जाता है, जो युगों से सनातन संस्कृति की गौरवशाली परंपराओं को कायम रखता है।

2. **भगवान श्री चित्रगुप्त जी मंदिर, कांचीपुरम :** चित्रगुप्त मंदिर, कांचीपुरम, तमिलनाडु-दक्षिण भारत का सबसे पुराना चित्रगुप्त मंदिर। पुरातत्वविदों ने शिलालेखों के आधार पर पुष्टि की है कि इस मंदिर का निर्माण 9वीं शताब्दी के दौरान मध्यकालीन चोलों द्वारा किया गया था।

3. **भगवान श्री चित्रगुप्त जी देवालयम, फलकनुमा, हैदराबाद :** 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में कुतुब शाही द्वारा नियोजित कायस्थों द्वारा निर्मित। भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अधिवक्ताओं का एक बड़ा वर्ग अंग्रजों द्वारा थोपे गए न्याय की देवी की तराजू वाली मूर्ति के स्थान पर न्यायाधिपति भगवान श्री चित्रगुप्त की मूर्ति की स्थापना का मांग कर रहा है।

(लेखक : राजेश श्रीवास्तव (लेखाकार) संस्थापक एवं आजीवन संरक्षक, श्री चित्रगप्त सभा, नोएडा)

हास्य-व्यंग्य

करवाचौथ का कानूनी पहलू और मेरी श्रीमतीजी

प्रो. प्रदीप माथुर

सुबह-सुबह मुझे योग या मॉर्निंग वॉक ज्यादा अच्छा लगता है, घर के बाहर बैठकर शांति से चाय की चुस्की लेना। जब सूरज की किरणें अखबार के साथ पृथ्वी पर उतरती हैं तो लगता है कि दिल्ली महानगर की भीड़-भाड़ भरी जिंदगी में अब भी कुछ सुंदर और सभ्य बचा है।

उस दिन भी ऐसा ही था। बस चाय का प्याला हाथ में लिया ही था कि देखा-पड़ोसी और मित्र भट्ट साहब किसी मिशन पर निकल रहे हैं। जो व्यक्ति रोज सूरज को दोपहर में नमस्कार करता हो, उसे भोर में भागते देखना अपने आप में आश्चर्यजनक था।

मैंने आवाज लगाई, 'अरे भट्ट साहब! इतनी सुबह कहाँ जा रहे हैं?' वे ठिठके और बोले- 'फल-वल लेने जा रहा हूँ, श्रीमती जी को सिगड़ी करनी है।' 'सिगड़ी करनी है? ये क्या होता है?' मैंने पूछा। 'अरे आपको नहीं मालूम? आज करवाचौथ है! विवाहित महिलाएं सूर्योदय से पहले कुछ खाकर दिन भर निर्जला व्रत रखती हैं। कल शाम बाजार नहीं जा पाया था, इसलिए अब जा रहा हूँ।' इतना कहकर भट्ट साहब स्कूटर पर ऐसे निकले जैसे किसी राष्ट्रीय दायित्व पर जा रहे हों।

मैंने अख़बार खोला और चाय की चुस्कियों के साथ पढ़ने लगा। अंग्रेजी का प्रतिष्ठित समाचारपत्र और उसमें इतनी गलतियाँ! सोचा, जब मैं अखबार में काम करता था तो ऐसी गलती पर संपादक जी दो दिन बाद कान पकड़कर बाहर कर देते थे। खैर, समय बदल गया है। नए जमाने में कुछ अच्छी बातें भी हो रही हैं, यही सोचकर मैं दार्शनिक मुद्रा में अखबार के पन्ने पलटता रहा।

भट्ट साहब कब लौटकर आ गए, पता ही नहीं चला। मेरे सामने कुर्सी पर बैठते हुए बोले, 'कहिए, आप कुछ कह रहे थे?'

मेरी तंद्रा टूटी। 'कुछ नहीं,' मैंने कहा, 'आपको इतनी सुबह देखकर थोड़ा चौंक गया था।' वे बोले, 'क्या करें? कल देर से दफ्तर से लौटा, बाजार नहीं जा पाया। ध्यान ही नहीं रहा कि करवाचौथ है, और श्रीमती जी को सुबह कुछ खाना होगा।'

'अच्छा, तो ये बात है,' मैंने कहा। 'चाय पिएंगे?' वे बोले, 'क्यों नहीं!' मैं अंदर गया, केतली से अपने हिस्से की दूसरी प्याली भरी और उनके लिए ले आया। प्याला थमाते हुए बोला, 'बिस्कुट भी ले लीजिए।' हमेशा हल्की-फुल्की बातें करने वाले भट्ट साहब आज कुछ गंभीर और उखड़े-उखड़े लगे। मैंने पूछा, 'क्या बात है? कुछ सोच रहे हैं क्या?' वे बोले, 'सोच रहा था कि करवाचौथ का यह उपवास पूरी तरह असंवैधानिक है। मगर अगर मैं यह कह दूं, तो मेरी पत्नी समेत सारी महिलाएं मेरे खिलाफ लामबंद हो जाएंगी।' उनकी बात सुनकर मेरे अंदर का पत्रकार जाग गया। मैंने अखबार मोड़ा और पूछा, 'वो कैसे?' वे बोले, 'देखिए, हमारे संविधान में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिए गए हैं। लेकिन करवाचौथ जैसे पर्व स्त्री को पुरुष की आराधना में लगाकर उसे दोयम दर्जे का नागरिक बना देते हैं।' 'बात तो आपकी ठीक है,' मैंने कहा, 'मगर मैंने कभी इस दृष्टि से सोचा नहीं था।'

भट्ट साहब अब उत्साहित हो गए। बोले, 'आप तो अनुभवी पत्रकार हैं और विचारवान लेखक भी। मुझे मालूम था कि कोई और समझे न समझे, आप मेरी बात का मर्म अवश्य समझेंगे।'

'जी, बिल्कुल,' मैंने कहा। वे बोले, 'और देखिए, करवाचौथ संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणा-पत्र के भी विरुद्ध है। उस घोषणा-पत्र के अनुसार दुनिया के सभी स्त्री-पुरुष समान मानव अधिकारों के अधिकारी हैं।'

इतने में अंदर से श्रीमती जी की आवाज आई- 'और चाय लोगे?' 'हाँ, दो कप ले आओ, भट्ट साहब भी बैठे हैं,' मैंने कहा।

भट्ट साहब बोले, 'आप इतने बड़े पत्रकार हैं, इस विषय पर लिखिए। टीवी पर बोलिए, समाज पर असर पड़ेगा। लोग अभी इस मुद्दे को गंभीरता से नहीं लेते।' मैंने कहा, 'ठीक है, देखूंगा।' भट्ट साहब अब पुराने समाजवादी कार्यकर्ता की तरह एक्शन मोड में आ गए थे। बोले, 'देखिए, हर न्यायप्रिय नागरिक का कर्तव्य है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के अधिकारों के लिए संघर्ष करे। आप जानते हैं कि दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों की तरह महिलाएं भी हमारे समाज की कमजोर वर्ग हैं।'

इतने में मेरी पत्नी ट्रे में दो प्यालियां चाय और बिस्कुट लेकर आईं। उन्हें देखकर भट्ट साहब मुस्कुराए, 'भाभी जी, आपने सिगड़ी कर ली?' श्रीमती जी बोलीं, 'मुझे करने की जरूरत नहीं है। मैं करवाचौथ का उपवास नहीं रखती। इन्होंने शुरू से करने ही नहीं दिया।' भट्ट साहब के चेहरे पर चमक आ गई। मेरी ओर इशारा करके बोले, 'देखा! भाई साहब बहुत प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्ति हैं, इन सब रूढ़िवादी परंपराओं के विरोधी हैं।'

श्रीमती जी मुस्कुराईं और बोलीं, 'किसके विरोधी हैं, ये मुझे नहीं पता। पर पैसे खर्च करने के विरोधी जरूर हैं। मेहंदी लगवाने, नई चुनरी और माला खरीदने में जो खर्च होता है, वह बच जाता है- इसलिए करवाचौथ नहीं मनाने देते।' हम दोनों ने श्रीमती जी की ओर देखा। वे ट्रे उठाकर शांत भाव से अंदर चली गईं। दो मिनट की चुप्पी रही। फिर भट्ट साहब बिना कुछ बोले उठे और अपने घर की ओर चल दिए। मैंने फिर अखबार खोला और चाय की आखिरी चुस्की लेते हुए सोचा-'संविधान और करवाचौथ,दोनों के बीच अभी बहुत दूरी है।' ■■

RNI NO. : UPHIN/2016/68336

See Media Map Website

Website link: www.mediamap.co.in

View Media Map YouTube

Media Map News

जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep- 124

3 views • 4 hours ago

जन संवाद 6 : नेहा हो या कुणाल, व्यंग्य से क्यों डरना? Ep- 123

4 views • 4 hours ago

विविधा 15 : जज को भी छह महीनों की सजा : Ep- 122

27 views • 21 hours ago

विविधा- 14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ख़राब कर रहें हैं। Ep- 121

6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विश्वास के दर्शन से जुड़ा, मीडियामैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों को संबोधित करना चाहते हैं। वरिष्ठ मीडियाकर्मियों के समूह द्वारा किया गया यह एक स्वैच्छिक प्रयास है, जिसका किसी राजनीतिक, सामाजिक या व्यावसायिक समूह से कोई संबंध नहीं है। मीडिया मैप के प्रकाशन को निरंतर व सुचारु रूप से जारी रखने हेतु आपका सहयोग आवश्यक है।

- ***State Bank of India***
- ***Account No. 43812481024***
- ***IFSC # SBIN0005226***
- ***प्रस्तुत QR कोड को स्कैन करें।***

प्रकाशक
MBKM Foundation, एक पंजीकृत गैर-लाभकारी संगठन

पंजीकृत कार्यालय
फ्लैट नंबर: 2332, सेक्टर-डी, पॉकेट-2, वसंत कुंज, दक्षिण दिल्ली

RNI No. : UPHIN/2016/68336

Please Stay with us and Explore the Beauty of the Surrounding Areas

Scholars Destination

PLEASE CONTACT

9045005700 | 9910322682 | www.sdmotel.com | info@sdmotel.com

BHALUGAAD WATERFALL

KAINCHI DHAM

MUKTESHWAR DHAM

CHAULI KI JALI